DELHI UNIVERSITY
LIBRARY

DELHI UNIVERSITY LIBRARY

Cl/No. 0157: 3M76:36 152 H9

Ac. No. 111437

Date of release for loan 23 SEP. 1961

This book should be returned on or before the date last stamped below. An overdue charge of Six nP. will be charged for each day the book is kept overtime.

बड़ी दीदी

लेखक

श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

अजय प्रकाशन
५३९;ई-१ कल्यानी देवी साउथ,
इलाहाबाद-३

साथ पुत्र के पीछे लगी रहती थी कि वह अक्सर यह नहीं जान पाता था कि उसकी अपनी भी कुछ सत्ता है या नहीं ! सुरेन्द्र नाम का कोई स्वतन्त्र जीव इस संसार में नहीं रहता था; उस विमाता की इच्छा ही एक मनुष्य का रूप रखकर काम-काज करती, सोती-बैठती, पढ़ती-लिखती, परीक्षा देती और पास करती थी—यही कहना ठीक होगा। यह विमाता अपने पेट के लड़के की ओर से कुछ उदासीन रहने पर भी सुरेन्द्र की देख-रेख में रत्ती भर ढिलाई न करती थी। सुरेन्द्र के देखभाल की कोई सीमा न थी। सुरेन्द्र का छोटा-सा छोटा काम तक सौतेली माँ की दृष्टि से छिपा न रहता था। इस कर्तव्यशील स्त्री के पथ-प्रदर्शन में रहकर सुरेन्द्र ने लिखना-पढ़ना तो सीख लिया, लेकिन आत्मविश्वास और स्वावलम्बन का पाठ न सीख पाया। उसे अपने ऊपर, अपने वीरत्व पर, तनिक भी विश्वास न था। उसके द्वारा कोई काम सर्वांग-सुन्दर और सम्पूर्ण हो सकता है, इसकी आशा ही वह न कर सकताथा। किस समय उसे किस वस्तु की जरूरत होगी, अथवा किस समय उसे क्या करना होगा, यह ठीक करने का भार वह पूर्णतः किसी दूसरे आदमी पर रख छोड़ता था। नींद लगी है या भूख लगी है, यह भी वह बहुधा ठीक से न समझ सकता था। जब से होश सँभाला तभी से विमाता के ऊपर आश्रित रहकर उसने ये पन्द्रह वर्ष बिताये थे। इसी कारण विमाता को उसके लिए अनेक उपाय करने पड़ते थे। विमाता को इसी पुत्र के तिरस्कार, अनुयोग, लाँछना, झिड़की और ताड़ना में तथा मुँह बनाने में चौबीस घण्टे में बाईस घण्टे बिताने पड़ते थे। इसके अलावा जिस वर्ष सुरेन्द्र को परीक्षा देनी होती थी उस साल ही से उसे रात-रात भर जगाने के लिए बेचारी माता को भी रात की सुख निद्रा से हाथ धोना पड़ता था। सौत के लड़के के लिए कौन स्त्री इतना कर सकती है ? पास-पड़ोस के लोग एक मत से राय बाबू की पत्नी की बड़ाई करते थे।

सुरेन्द्र के ऊपर विमाता के हार्दिक स्नेह और यत्न में तनिक भी कमी न होने पाती थी। राय-बहू जब पुत्र को बकती-झकती और बिगड़ती थीं, तब अगर पुत्र का मुख गरम हो उठता था, और आँखों में आँसू भर आते थे, तो वे तुरन्त उसे ज्वर आने का पूर्व-लक्षण समझ लेती थीं, इसमें उन्हें तनिक भी सन्देह न रह जाता था। तब वे तुरन्त ही पुत्र को तीन दिन लगातार केवल साबूदाना खिलाने में न चूकती थीं! बेटे की मानसिक विकास और शिक्षा के बारे में वे और भी अधिक तीक्ष्ण दृष्टि रखती थीं। अगर कभी सुरेन्द्र के शरीर में स्वच्छता अथवा, आजकल के जमाने की नई रुचि के अनुसार, नये फैसन का कोई कपड़ा वे देख लेतीं तो लड़के की शौकीनी की चाट और बाबू बनने की इच्छा को उनकी आँखें तुरन्त ताड़ जाती थीं; फिर वे उसी दम दो-तीन हफ़्ते के लिए सुरेन्द्र के कपड़ों का धोबी के घर जाना बन्द कर देती थीं।

इसी तरह सुरेन्द्र के दिन बीत रहे थे। ऐसी स्नेह-मिश्रित सावधानी के बीच रहते-रहते कभी-कभी सुरेन्द्र को जान पड़ता था, उसका जीवन, जीवन कहलाने के योग्य नहीं। कभी वह सोचता था, शायद इसी तरह सभी लोगों के जीवन का प्रारम्भिक काल बीतता है। किन्तु किसी-किसी दिन आस-पास के लोग गले पड़कर उसके दिमाग में दूसरी ही तरह की बातें ठूँस जाया करते थे।

एक दिन ऐसा ही हुआ। एक मित्र ने सुरेन्द्र को राय दी कि उसके जैसा बुद्धिमान लड़का यदि विलायत जा सके, तो उसके लिए भविष्य में उन्नति की बहुत बड़ी आशा है; अपने देश में लौट आकर वह बहुत लोगों की बहुत तरह से भलाई कर सकेगा। यह सलाह सुरेन्द्र को कुछ बुरी न मालूम पड़ी। जंगली चिड़िया के विपरीत पिंजड़े में कैद चिड़िया ही अधिक छटपटाती है। सुरेन्द्र कल्पना की आँखों से यह रोशनी देख था। जिसमें खुली हवा तथा स्वाधीनता की झलक है। इसी से उसका

परवश हृदय उन्मत्त पक्षी की तरह बाहर निकलने के लिए पिंजड़े के भीतर चारों ओर छटपटाता हुआ चक्कर काटने लगा।

सुरेन्द्र ने पिता के पास जाकर प्रार्थना की कि मुझे विलायत भेजने का इन्तजाम कर दीजिए। विलायत-यात्रा करने में जो उन्नति की आशा सुनी थी, वह भी उसने उन्हें बताई। पिता ने कहा—'सोचूँगा' किन्तु पत्नी की इच्छा एकदम इसके विरुद्ध पाई गई। वे पिता और पुत्र के बीच में आँधी की तरह आकर ऐसे जोर से गरजीं कि दोनों आदमी सन्नाटे में आ गये।

मालकिन ने कहा—"तो फिर मुझे भी विलायत भेज दो, नहीं तो वहाँ सुरेन्द्र की देख-भाल कौन करेगा? जिसे यह भी नहीं मालूम कि किस वक्त क्या खाना होता है, कब क्या पहनना होता है, उसे अकेले विलायत भेज रहे हो! इस लड़के को वहाँ भेजना घर के घोड़े को वहाँ भेजना एक-सा ही है। बल्कि घोड़े वगैरह जानवर इतना समझ लेते हैं कि उन्हें भूख लगी है या नींद मालूम हो रही है, तुम्हारे लड़के को तो इतना भी मालूम नहीं।" इतना कहकर उन्होंने फिर उसी तरह की व्यंगात्मक हँसी शुरू कर दी।

हँसी की अधिकता देखकर राय बाबू बहुत शर्मिन्दा हुए। सुरेन्द्र ने भी समझा कि इस तरह की अखण्डनीय सुदृढ़ युक्ति के विरुद्ध और किसी प्रकार का खण्डन किया ही नहीं जा पकता। उसने विलायत जाने की आशा छोड़ दी। उसके 'उसी' मित्र ने यह समाचार सुनकर बड़ा खेद प्रकट किया। किन्तु वह भी यह न बतला सका कि विलायत जाने के लिए और कोई रास्ता भी हो सकता है कि नहीं। बातचीत खतम होते समय उसने इतना अवश्य कहा कि भीख माँगना भी बेहतर है, इस तरह पराधीन रहने की अपेक्षा और यह तो निश्चित है कि जो तुम्हारी तरह सम्मान के साथ एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण कर सकता है उसे कहीं भी पेट भर आहार की कमी नहीं हो सकती।

सुरेन्द्र ने घर पहुँचकर इसी बारे में सोचना प्रारम्भ किया। जितना ही उसने सोचकर देखा, उतना ही उसे मित्र का यह कहना कि 'इससे तो भीख माँगकर खाना अच्छा', ठीक मालूम पड़ने लगा। यह बात ठीक है कि सभी आदमी विलायत नहीं जा पाते; लेकिन उन्हें इस तरह जीवित लाश बनकर दिन नहीं बिताने पड़ते।

एक दिन अधिक रात बीते सन्नाटे में सुरेन्द्र घर से चल पड़ा। स्टेशन आकर उसने कलकत्ते का टिकट खरीदा। अब वह गाड़ी में सवार हो गया। पिता के नाम एक पत्र लिखकर उसने उसे डाक में छोड़ दिया। उसमें यही लिखा—कुछ दिनों के लिए मैं घर छोड़ रहा हूँ। बेकार खोजने से कुछ लाभ न होगा। और, अगर पता भी लग जायगा, तो घर लौटने की कोई आशा नहीं।

राय बाबू ने पुत्र का यह पत्र पत्नी को दिखाया। उन्हों ने कहा—सुरेन्द्र अब समझदार हुआ है, पढ़-लिख चुका है, पर निकल आये हैं, वह अब न उड़कर भाग खड़ा होगा तो और कब होगा!

फिर भी पिता ने पता लगाने में कमी नहीं की। कलकत्ते में जान-पहचान के जितने लोग रहते थे उन सबको पत्र भेजे। लेकिन कोई फल न निकला सुरेन्द्र का पता नहीं लग सका।

-: ० :-

दूसरा परिच्छेद

भीड़भाड़ और शोर-गुल से कलकत्ते की सड़कें गुलजार रहती हैं। उन सड़कों पर पहुँचते ही सुरेन्द्र आश्चर्य-चकित हो गया। इस मुश-किल में सुरेन्द्र को कोई साथी न सूझ पड़ा। झिड़कने और तिरस्कार करने वाला भी कोई न था, और दिन-रात अपने कड़े शासन में रखने वाला भी कोई न दिखाई पड़ता था। भूख-प्यास से मुँह सूख जाने पर कोई उसकी ओर घूमकर भी नहीं देखता; मुँह मलीन होने पर भी उस ओर कोई दृष्टि नहीं देता। यहाँ स्वयं ही अपनी खबर करनी होती है, आप ही अपना ध्यान रखना पड़ता है। यहाँ भिक्षा भी मिलती है, स्नेह मिलने की जगह भी है, आश्रय भी मिल जाता है, लेकिन उसके लिए स्वयं प्रयत्न करना पड़ता है। अपनी इच्छा से स्वयं कोई तुम्हारे दुख में शामिल न होगा।

यहाँ आकर पहले सुरेन्द्र ने यह सीखा की खाने की कोशिश स्वयं करनी होती है, रहने के लिए स्थान खुद ही खोज लेने की आवश्य-कता होती है, और सो जाने से भूख नहीं शान्त होती; भोजन कर लेने से नींद की खुमारी नहीं हटती।

घर छोड़े सुरेन्द्र को कितने ही दिन हो गये। कितनी ही राहों में घूमने-फिरने से उसका शरीर भी बहुत क्लान्त हो गया था, और पास का पैसा भी समाप्त हो आया था। कपड़े मैले हो गये थे, फटने भी लगे थे। रात को पड़कर सो रहने भर को भी कोई जगह न थी। सुरेन्द्र की आँखों में आँसू भर आये। घर को पत्र लिखने की इच्छा नहीं होती

थी। बड़ी शरम लगती थी। और, सबसे बढ़कर यह रुकावट है कि जब उसको सौतेली माँ के स्नेह-करुण चेहरे की याद हो आती है, तब घर जाने की इच्छा बिजली की तरह गायब हो जाती है। वहाँ किसी समय अपने रहने की बात सोचने पर भी उसे डर लगता है।

अपने ही समान गरीब आदमी को देखकर एक दिन सुरेन्द्र ने कहा—भाई साहब तुम लोग यहाँ क्या धन्धा करके खाते-पीते हो?

वह आदमी कुछ सरल प्रकृति का था, नहीं तो प्रश्नकर्ता का मजाक उड़ाने लगता। उसने सरलता से उत्तर दिया—नौकरी और मेहनत-मजूरी करके पैसे कमाते और उसी से खाते-पीते हैं। कलकत्ते में रोज-गार की कहाँ कमी है?

सुरेन्द्र ने पूछा—भला मुझे भी कहीं नौकरी दिला सकते हो?

उसने पूछा—तुम कौन-सा काम जानते हो?

सुरेन्द्र कोई काम करना नहीं जानता था। इसी से चुपचाप होकर सोचने लगा।

वह—तुम क्या किसी भले घर केलड़के हो?

सुरेन्द्र ने सिर हिलाकर स्वीकार किया।

वह—तो फिर लिखा पढ़ा क्यों नहीं?

सुरेन्द्र—लिखा-पढ़ा तो हूँ।

उस आदमी ने दम ,र सोचकर कहा—तो तुम इस बड़े मकान में अभी जाओ। उसमें एक बड़े अमीर आदमी, कोई जमींदार रहते हैं। वे कुछ प्रबन्ध कर देंगे।" यह कहकर वह चला गया।

सुरेन्द्र फाटक के समीप आया। जरा ठिठककर वहीं खड़ा हो गया। फिर पीछे हट गया। फिर वहीं आकर खड़ा हो गया। फिर पीछे लौट गया। उस दिन और कुछ नहीं हुआ। दूसरा दिन भी इसी तरह संकोच में बीत गया। दो दिन इसी तरह फाटक के पास संकोच करके

तीसरे दिन साहस करके सुरेन्द्र भीतर उपस्थित हुआ। सामने एक नौकर खड़ा था। उसने पूछा—क्या चाहते हो?

"जमींदार साहब से मुलाकात करना चाहता हूँ।"

"बाबू साहब घर में मौजूद नहीं हैं।"

सुरेन्द्र का हृदय आनन्द से भर उठा—एक बहुत ही जटिल कार्य से उसे छुटकारा मिल गया। बाबू घर में नहीं हैं! नौकरी की बात की बात, अपने दुःख-कष्ट की कहानी कहनी नहीं पड़ी—यही उसके इस आनन्द का प्रमुख कारण था। तब वह दूने उत्साह से लौट पड़ा और हलवाई की दूकान में बैठकर भर पेट खाने के बाद आनन्दपूर्वक कुछ देर घूमता घामता रहा। वह मन में क्रमशः सोचने लगा कि अगले दिन किस तरीके से बातचीत की जाय, जिसमें अवश्य ही उसका कुछ ठिकाना हो जाय।

मगर दूसरे दिन सुरेन्द्र का वैसा उत्साह नहीं रहा। सुरेन्द्र जितना ही उस घर के निकट पहुँचने लगा उतना ही वहाँ से लौट चलने की इच्छा बलवती होती गई। क्रमशः फाटक के समीप पहुँचने पर बिलकुल ही उसका जी बैठ गया। पैर किसी तरह भीतर प्रवेश करने को तैयार न हुए। आज उसको किसी तरह यह नहीं जान पड़ता था कि वह अपने ही कार्य के लिये यहाँ तक आया है। ठीक यही खयाल मन में आया था कि जैसे और किसी ने जोर करके उसे यहाँ ठेलकर भेज दिया है। किन्तु फाटक पर खड़े होकर प्रतीक्षा न करने का वह प्रण कर चुका था, इसलिए उसे भीतर जाना ही पड़ा। उसी नौकर से फिर मुलाकात हुई। उसने कहा—बाबू साहब इस समय घर में मौजूद हैं। क्या मुलाकात कीजिएगा।

"हाँ।"

"तो फिर चले आइए।"

यह और भी कठिन था। जमींदार बाबू का मकान बहुत बड़ा और

शानदार था। सर्वत्र पूरा साहबी ढंग, अँगरेजी समान, वस्तुयें और विलायती ढंग की सजावट नजर आती थी। कमरे के बाद दूसरा कमरा था; संगमरमर की सीढ़ियां थीं, हर एक कमरे झाड़-कँवललैम्प लाल कपड़े के गिलाफ से ढके हुए शोभा पा रहे थे। दीवारों से लगे हुए आदमकद कीमती शीशे रक्खे थे। कितने ही कीमती चित्र और फोटो लगे हुए थे। किन्तु यह सब सजावट किसी और के लिए भले ही आश्चर्य की बात हो, पर सुरेन्द्र के लिए नहीं थी। क्योंकि उसके पिता का घर भी किसी गरीब की कुटिया न थी। और चाहे जो कुछ भी हो, वह दरिद्र पिता के आश्रय में नहीं पला था। सुरेन्द्र तो केवल उसी आदमी के विषय में सोच रहा था जिससे वह मुलाकात करने, जिसकी खुशामत करने वह जा रहा है। वे क्या प्रश्न करेंगे, और वह उनका क्या उत्तर देगा ?

किन्तु अब तो यह सब कुछ सोचने का समय नहीं है। घर के स्वामी सामने ही बैठे हैं। गृह स्वामी ने प्रश्न—क्या काम है ?

आज तीन दिन से सुरेन्द्र यही बात सोच रहा था, किन्तु यहाँ आकर सब भूल गया। हिचकिचा कर बोला— मैं—मैं

जमींदार बाबू का नाम ब्रजनाथ लाहिड़ी था। ये पूर्व-बंगाल के एक बड़े जमींदार हैं। सिर के बाल कुछ पकने लगे हैं—नजले का रोग न था, उम्र के अनुसार बालों का पकना ठीक ही था। बड़े आदमी ठहरे, दुनिया देखी पड़ी थी, इसी से सुरेन्द्र को देखते ही उसके बारे में बहुत कुछ समझ गये। कहने लगे—हाँ जी, क्या चाहते हो तुम ?

"कोई एक—"

"कोई एक ! क्या मतलब ?"

"नौकरी।"

ब्रज बाबू ने हँसते हुए कहा—यह तुमसे किसने बताया कि मैं तुमको नौकरी दे सकता हूँ ?

"रास्ते में एक आदमी से मुलाकात हुई थी। मैंने उससे इस बारे में पूछा था तो उसी ने आपका नाम बताया—"

"अच्छा। घर तुम्हार कहाँ है?"

"पछाँह में है।"

"वहाँ तुम्हारे कौन-कौन रहते हैं?"

सुरेन्द्र ने सब बातें बता दिया।

"तुम्हारे पिता क्या कार्य करते हैं?"

समय के फेर में पड़कर सुरेन्द्र ने नया तरीका सीख लिया था। कुछ रुककर उत्तर दिया—एक मामूली सी नौकरी करते हैं।

"उससे निर्वाह नहीं होता, इसी से तुम नौकरी करना चाहते हो—क्या यही बात है न?

"जी हाँ।"

"यहाँ किस जगह टिके हो?"

"कोई एक स्थान नहीं है—किस न किसी जगह पड़ रहता हूँ।"

ब्रज बाबू के मन में दया आई। सुरेन्द्र को पास बिठालकर कहने लगे—तुम अभी तक बच्चे ही हो। इस कच्ची उम्र में घर छोड़कर यहाँ आने के लिए तुम मजबूर हुए हो, यह सुनकर मुझे दुःख हुआ। मैं स्वंय तो कोई नौकरी तुमको दे नहीं सकता, लेकिन इतना अवश्य कर सकता हूँ कि तुम्हारी नौकरी का कोई रास्ता हो जायगा।

"अच्छी बात है" कहकर सुरेन्द्रनाथ जाने को उद्यत हुआ। यह देखकर ब्रज बाबू ने उससे कहा—तुम्हें इस बारे में अब क्या कुछ और पूछने की आवश्यकता नहीं है?

"जी नहीं।"

"तो इतने ही से तुहारा काम ठीक हो जायगा? तुमने यह तो जानने की कोशिश ही नहीं की कि मैं क्या उपाय कर सकता हूँ और कब कर सकता हूँ।"

सुरेन्द्र शर्मिन्दा होकर घूमकर खड़ा हो गया। ब्रज बाबू ने हँसकर कहा—अब यहाँ से कहाँ जाने का इरादा है ?

"किसी हलवाई की दूकान पर।"

"क्या वहीं भोजन करोगे ?"

"जी, रोज वहीं करता हूँ।"

"तुमने क्या पढ़ा-लिखा है और कहाँ तक ?"

"यों ही थोड़ा-बहुत जानता हूँ ?"

"क्या मेरे लड़के को पढ़ा सकते हो ?"

सुरेन्द्र ने प्रसन्न होकर कहा—जी हाँ, पढ़ा सकता हूँ।

ब्रज बाबू फिर मुस्कराये। उन्हें समझ पड़ा कि दुःख और गरीबी के कारण इस लड़के के होश ठीक नहीं हैं। क्योंकि कितनी उम्र के बालक को पढ़ाना होगा, क्या विषय पढ़ाना होगा, यह कुछ जाने बिना ही इतना प्रसन्न हो उठना उनको पागलपन का ही चिन्ह जान पड़ा। उन्होंने कहा—अगर वह लड़का बी० ए० क्लास में पढ़ता हो तो तुम उसे कैसे पढ़ाओगे ?

सुरेन्द्र ने कुछ गम्भीरता से सोचकर कहा—तो भी काम चला लूँगा।

ब्रज बाबू ने फिर और आगे कुछ नहीं कहा। नौकर को बुलाकर उससे कहा—बाँके, इन बाबू के रहने के लिए एक कमरा खाली कर दो, और इनके नहाने खाने का प्रबन्ध करो।

इसके पश्चात सुरेन्द्र की ओर देखकर ब्रज बाबू ने कहा—शाम के बाद मैं तुमको फिर बुलाऊँगा। जब तक कहीं कोई नौकरी नहीं मिलती तब तक आराम से यहीं, मेरे घर में रहो।

दोपहर को भोजन करने के लिए भीतर जाकर ब्रज बाबू ने अपनी लड़की माधवी को अपने पास बुलाकर कहा—बेटी, एक दुखी आश्रय-हीन आदमी को मैंने आज अपने घर में आश्रय दिया है।

माधवी ने पूछा—कौन है बाबू जी ?

ब्रज०—कहा तो, एक गरीब दुखिया है। इससे अधिक मुझे नहीं मालूम, कुछ शिक्षित भी है, क्योंकि तुम्हारे दादा (बड़े भाई) को पढ़ाने की बात कहते ही उसने उसे स्वीकार कर लिया। जो आदमी बी० ए० के विद्यार्थी को पढ़ाने की योग्यता रखता है वह कम से कम तुम्हारी छोटी बहन को तो अवश्य पढ़ा सकेगा। मैं सोचता हूँ, उसे प्रमीला के लिए मास्टर रख लिया जाय।

माधवी ने इसमें कोई आपत्ति नहीं की।

शाम के बाद सुरेन्द्र को बुलाकर ब्रज बाबू ने यह बात कह दी। दूसरे दिन से ही सुरेन्द्र प्रमीला को पढ़ाने लगा।

प्रमीला सात वर्ष की लड़की थी। वह "बोधोदय" पढ़ती थी। उसने अपनी बड़ी बहन माधवी से अँगरेजी की पहली पुस्तक मेंढक की कहानी तक पढ़ी थी। अपनी कापी, किताब, स्लेट, पेंसिल, कलम आदि सामान लाकर प्रमीला अपने नये मास्टर के पास पढ़ने गई।

"डू नाट मूव", सुरेन्द्र ने उसे बताया—"डू नाट मूव" इसके अर्थ हुए—हिलो नहीं।

प्रमीला इसे बार-बार रटकर याद करने लगी।

कुछ देर के पश्चात सुरेन्द्र ने अनमने भाव से स्लेट खींच ली। वह पेंसिल लेकर उस पर कठिन सवाल लगाने लगा। इसी तरह सात-आठ, फिर नौ बजते गये। प्रमीला कभी इधर और उधर घूमकर तसवीर वाले पेज उलटाकर, लेटकर, बैठकर मुँह में लजेंजस की टिकिया रखकर, बेचारी गुमसुम-सी मेंढक के सारे बदन में स्याही पोतती हुई रटती जाती थी—'डू नाटमूव' माने हिलो नहीं।

प्रमीला ने ऊबकर कहा—मास्टर साहब, अब अन्दर जाऊँ ?

"जाओ।"

सुरेन्द्र का सबेरे का समय इसी प्रकार बीतता है। लेकिन दोपहर

के समय का काम जरा और ढंग का है। नौकरी लगा देने के लिए ब्रज बाबू ने विनय पूर्वक कई भले आदमियों के नाम चिट्ठियाँ लिख दी थीं। वे चिट्ठियाँ जेब में रख कर सुरेन्द्र दोपहर को नौकरी की खोज में निकल जाता है। पता लगाते-लगाते लोगों के घरों के सामने जाकर खड़ा होता है। देखता है—कितना बड़ा आलीशान मकान है, कितनी खिड़कियाँ और दरवाजे हैं, कितने कमरे हैं, दुमंजिला है या तिमंजिला, दरवाजे के आगे कोई लालटेन का खम्भा है या नहीं। यों घूम फिरकर वह शाम के पूर्व ही अपने डेरे पर लौट आता है।

कलकत्ते में आते ही सुरेन्द्र ने पुस्तकें खरीद ली थीं। कुछ घर से भी साथ ले आया था। आजकल गैस की रोशनी में उन्हीं पुस्तकों को पढ़ा करता है। ब्रज बाबू नौकरी के विषय में पूछताछ करते हैं, तो या तो चुप रहता है, या कह देता है बड़े आदमी से भेंट ही नहीं होती।

—: ० :—

तीसरा परिच्छेद

ब्रज बाबू की धर्मपत्नी को मरे हुये चार साल हो गये। बुढ़ापे के इस दुःख की विषमता को बूढ़े भुक्तभोगी ही भली भाँति जान सकते हैं। खैर, वह बात जाने दो। ब्रज बाबू की दुलारी षोड़षी कन्या माधवी देवी इसी उमर में पति को गँवा चुकी है। इसी दुःख ने ब्रज बाबू के शरीर का आधे से अधिक खून चूस डाला है। उन्होंने बड़ी साध और बड़ी धूम-धाम के साथ लड़की का ब्याह रचाया था। अपने यहाँ बहुत द्रव्य होने के कारण उन्होंने यह नहीं देखभाल की कि वरपक्ष के व्यक्ति धनी हैं या नहीं। उन्होंने वर की जर-जमीन जायदाद न देखकर उसकी विद्या, रूप, स्वास्थ्य, शील, सच्चरित्रता आदि सद्‌गुणों की महत्ता को ही महत्व दिया था। ये सब गुण अच्छी तरह देखभाल कर ही उन्होंने माधवी का विवाह किया था।

ग्यारह वर्ष की छोटी अवस्था में माधवी का ब्याह हुआ था। तीन वर्ष तक वह ससुराल में रही। वहाँ प्यार, आदर, स्नेह, सभी कुछ उसे मिला था। किन्तु उसका पति योगेन्द्रनाथ अकाल मृत्यु के आक्रमण से किसी प्रकार भी न बच सका। माधवी के इस जन्म की सभी आशा-अभिलाषाओं पर तुषारापात करके, ब्रजराज की छाती में कठिन-प्रहार करके, वह होनहार जवान लड़का स्वर्ग सिधार गया। मरते समय जब माधवी बिलख-बिलख कर विलाप करने लगी, तब पति ने धीमे और कोमल स्वर से कहा था—माधवी, तुम्हें छोड़कर जा रहा हूँ, यही मुझको सबसे बढ़कर दुःख है। मरने से मेरी कुछ हानि नहीं हो सकती; मगर तुम जीवन भर दुःख-शोक-कष्ट भोगती रहोगी, यही सोचकर मेरा चित्त

बहुत व्यथित और व्याकुल हो रहा है। जी भरके तुम्हें आदर, प्यार न कर पाया...

योगेन्द्र के नेत्रों से बह रहे आँसुओं की लड़ी उसके शीर्ण वक्षः स्थल पर गिर रही थी। पति के आँसू अपने आँचल से पोछते हुए माधवी ने कहा था...दूसरे जन्म में जब तुम्हारे पैरों में मुझे स्थान मिलेगा तब मेरा आदर प्यार कर लेना...

इस पर योगेन्द्र ने कहा था...माधवी, देखो, मेरे जीवित रहते तुम्हारे जीवन का लक्ष्य मुझे सुख पहुँचाना ही होता, अब उस जीवन का लक्ष्य है तुम सभी दीन-दुखी जीवों को सुख पहुँचाना, उनकी सेवा करना, जिसके मुख पर दुःख के चिन्ह देखना, जिसे मलिन-मुख देखना, उसी को प्रसन्न-प्रफुल्लित बनाने की कोशिश करना। और अधिक क्या कहूँ माधवी,...

फिर बरबस उमड़े हुए आँसू बह चले, और माधवी उन्हें पोंछने लगी।

योगेन्द्र ने फिर से कहा...सुमार्ग में रहना...तुम्हारे ही पुण्य से मैं फिर तुमको पाऊँगा।

उसी दिन से माधवी बिलकुल ही बदल गई है। क्रोध, डाह, ईर्षा आदि की जो कुछ मात्रा उसमें थी भी वह सब स्वामी की चिन्ता की भस्म के साथ ही गंगाजल में उसने जिन्दगी भर के लिए बहा दिया। इस जीवन की कितनी साध, कितनी आकांक्षायें होती है! बिधवा हो जाने से हृदय की वह साध और आकांक्षायें कहीं चली नहीं जाती। माधवी के हृदय में जब कोई साध या आकांक्षा होती है तब वह पति की उन्हीं, अन्त समय की, कही बातों को सोचती है। जब वही नहीं रहे तब फिर किसलिए किसी से डाह या घृणा करूँ? किसके लिए दूसरे को दुख दूँ!' और सच तो यह है कि ये-सब हीन भावनायें उसके हृदय में किसी समय थीं ही नहीं। वह अमीर की लड़की है...उसकी

कोई साध, कोई आकांक्षा अपूर्ण नहीं थी...डाह और द्वेष करना तो उसने सीखा ही न था।

माधवी के हृदय में अनेक भाव भरे प्रेम पुष्प विकसित होते हैं। पहले जब वह सधवा थी, तब वह सुन्दर फूलों की माला गूँथ-गूँथ कर अपने पति को पहना दिया करती थी। किन्तु अब पति के न रहने पर भी उसने उन फूलों के वृक्षों को काट नहीं डाला। इस समय भी उसमें वैसे ही फूल विकसित होते हैं, मगर अब वे भूमि पर गिर पड़ते हैं। अब वह माला नहीं गूँथती, किन्तु गुच्छे के गुच्छे फूलों से अंजलि भर कर वह पुष्पांजलि दीन-दुखियों को बाँट दिया करती है। जिसके पास नहीं है, उसी को देती है; रत्ती भर भी कन्जूसी उसमें नहीं है, चेहरे पर उदासी की छाया नहीं पड़ने पाती।

ब्रज बाबू की पत्नी का जिस दिन स्वर्गवास हुआ उसी दिन से इस घर में विश्रृङ्खला बस गई थी। सभी अपनी-अपनी चिन्ताओं में चूर रहते थे, कोई किसी की देख-भाल न करता था, कोई किसी की ओर विशेष ध्यान न देता था। सभी के लिए एक-एक नौकर मुकर्रर था। वे लोग अपने-अपने मालिक का काम करते थे। रसोई में महाराज भोजन तैयार कर देते थे, और भारी 'अन्नसत्र' की भाँति सब लोग आ-आकर अपनी-अपनी जगह पर बैठ जाते थे। किसी को खाने को मिलता था, किसी को नहीं मिलता था, भूख के मारे दुखिया की खबर कौन लेता उसकी ओर आँख उठाकर देखता तक न था।

जिस दिन से माधवी भादों की भरी गंगा के प्रभाव जैसा रूप, स्नेह और ममता लेकर ससुराल से पिता के गृह लौट कर आई उसी दिन से जान पड़ा, जैसे उस उजड़े हुए घर में नवीन बसन्त फिर से लौट आया है। अब सभी उसको बड़ी दीदी कहते हैं, सभी माधवी के स्नेही हो गये हैं। घर का पालतू कुत्ता तक भी दिन भर के बाद एक बार बड़ी दीदी को देखने के लिए उत्सुक दिखाई पड़ता है—क्षुद्र जीव

को भी जैसे बड़ी दीदी के दर्शन किये बिना कल नहीं पड़ती। घर के इतने आदमियों में से एक आदमी को उसने भी जैसे स्नेहमयी, पहचान कर अपना हित चुन लिया है। घर के स्वामी ब्रज बाबू से लेकर जमादार, गुमाश्ता, मुनीम और अदना नौकर तक, सभी बड़ी दीदी के प्रेमी हैं, सबके मन में उसकी मूर्ति, उसका ख्याल बना रहता है; सभी उसके सहारे रहते हैं। हर एक आदमी को पक्का और दृढ़ विश्वास है कि चाहे जिस कारण से हो, बड़ी दीदी के ऊपर मेरा कुछ विशेष औरों से अधिकार है।

स्वर्ग में जिस कल्पवृक्ष की बात सुनाई पड़ती है उसे हमने आँखों से कभी नहीं देखा; यह भी जानते हैं कि उसे कभी देख पावेंगे या नहीं; इसीलिए नहीं कह सकते कि वह कैसा है, उसमें क्या-क्या विशेषताएँ हैं। लेकिन यह अवश्य निःसंदेह होकर, बिना किसी संकोच के कह सकते हैं कि ब्रज बाबू के घर वाले लोग एक सजीव कल्पवृक्ष पा गये थे। वह कल्पवृक्ष थी माधवी। उसके समीप जाकर हाथ फैलाने वाला कभी निराश नहीं होता था—प्रसन्न होकर ही लौटता था।

ऐसे प्रशंसनीय परिवार में स्थान पाकर सुरेन्द्र को एक नये ढंग का जीवन बिताने का उपाय सूझ पड़ा। उसने जब देखा कि सभी ने एक ही आदमी के ऊपर अपना-अपना बोझ लाद दिया है तब उसने भी वही किया। तथापि औरों की अपेक्षा उसकी धारणा माधवी के विषय में जरा दूसरी तरह की थी। वह सोचता था, इस घर के भीतर बड़ी दीदी नाम की एक सजीव वस्तु रहती है; वह सभी का देख भाल रखती है, खबर लेती है, सबका मान रखती है, इच्छायें पूर्ण करती है, उत्पात सहती है। जिसे जिस वस्तु की जरूरत होती है, वह उनसे मिल जाया करती है। पहले कलकत्ते की सड़कों पर मारे-मारे घूमते समय सुरेन्द्र को अपने लिए आप ही फिक्र करने की जरूरत कुछ-कुछ जान पड़ने लगी थी; लेकिन जब से वह इस घर में आया तब से तो यह

बिलकुल ही भूल गया कि उसे एक दिन भी अपने लिए कुछ परवाह करनी पड़ी थी, या भविष्य में करनी पड़ेगी।

कोट, कुर्ता, धोती, जूता, छड़ी वगैरह जिन वस्तुओं की जरूरत आदमी का हुआ करती है वे सब काफी मात्रा में सुरेन्द्र के पास थीं। रूमाल तक न जाने कौन उसके लिए कपड़ों के बीच में ख्याल करके ढँग के साथ रख जाता था। पहले उसे यह जानने के लिए आश्चर्य होता था कि कौन लाकर रख गया है। अब वह जब पूछता कि ये सब चीजें कहाँ से आई हैं तब उत्तर मिलता—बड़ी दीदी ने भेजी हैं। आज कल तो जलपान की वस्तुयें रखकर जो रकाबी भीतर से आती है, उसे देख कर ही वह जान जाता है कि बड़ी दीदी ही ने अपने हाथ से यह सब सामग्री सजा कर भेजी है।

एक दिन सुरेन्द्र सवाल करने बैठा तो उसे कम्पास की जरूरत पड़ी उसने प्रमीला से कहा—प्रमीला, जाओ, बड़ी दीदी से कम्पास माँग लाओ।

बड़ी दीदी को भला कम्पास से क्या काम था। मगर माधवी ने तुरन्त बाजार से आदमी के हाथ खरीद मँगाया, और भेज दिया। शाम को घूम कर लौटने पर सुरेन्द्र ने अपनी मेज पर कम्पास रखा देखा। दूसरे दिन सबेरे प्रमीला ने कहा—मास्टर साहब, दिदिया ने कल ही यह भेज दिया था।

इसके पश्चात् बीच-बीच में सुरेन्द्र ऐसी चीजें मँगा भेजने लगा जिनके लिए माधवी बड़ी परेशानी में पड़ जाती थी। बहुत तलाश करने पर कहीं वह चीज मिलती थी, और तब वह सुरेन्द्र की माँग पूरी कर पाती थी। किन्तु माधवी ने यह कभी नहीं कहलाया कि अमुक चीज नहीं है।

मान लो, कभी सुरेन्द्र ने एकाएक कहा…"प्रमीला, बड़ी दीदी से पाँच पुरानी धोतियाँ तो माँग लाओ। इन भिखमंगों को देनी हैं।"

अक्सर माधवी को इतनी फुरसत न रहती थी कि वह नया-पुराना देख-कर निकाले और दे। तब वह अपनी ही पाँच धोतियाँ उठाकर भेज देती थी। ऊपर खिड़की से उसे दिखाई पड़ता था कि चार पाँच गरीब दुखी आदमी आनन्द-कोलाहल करते हुए धोतियाँ लिये हुए चले जा रहे हैं।

सुरेन्द्रनाथ के छोटे-मोटे ये अत्याचार नित्यप्रति माधवी को सहन करने पड़ते थे। क्रमशः इन उपद्रवों के सहने की माधवी ऐसी अभ्यस्त हो गई थी कि अब उसे यह न जँचता था कि एक नये जीव ने उसकी गृहस्थी में आकर प्रतिदिन के काम काज के मध्य नये ढंग के उपद्रव खड़े कर दिये हैं।

इतना ही नहीं, माधवी को आजकल इस नवीन जीव के बारे में बहुत सावधानी बरतनी पड़ती है, बहुत अधिक दृष्टि रखनी पड़ती है—मुस्तैदी के साथ खोज-खबर लेनी पड़ती है। बात यह है कि अगर सुरेन्द्र अपनी जरूरत के मुताबिक सब चीज माँग लिया करता तब तो कुछ चिन्ता न होती; माधवी को जितनी मेहनत करनी पड़ती है वह आधी ही रह जाती! लेकिन बड़ी भारी चिन्ता और परेशानी तो यही है कि वह भोंदू अपने लिए कुछ भी नहीं माँगता—अपने लिए किसी चीज की जरूरत ही नहीं बताता। पहले माधवी ने यह नहीं जान पाया था कि सुरेन्द्र बिलकुल ही अपनी ओर से निश्चिन्त रहता है। कभी-कभी तो सबेरे चाय रक्खी-रक्खी ठण्डी हो जाती है, वह पीता ही नहीं! जलपान के लिए भेजी गई मिठाई कभी-कभी रक्खी ही रह जाती है—शायद उसमें हाथ लगाना ही वह भूल जाता है—सम्भव है, कुत्ते ही को सब खिलाकर घूमने चल देता हो। चौके पर भोजन करने बैठता है, तो भोजन-सामग्री की इज्जत ही नहीं करना जानता—कुछ थाली के नीचे गिराता है, कुछ अगल बगल कर दिया करता है—जैसे कोई चीज ही उसको नहीं भाती! नौकर-लोग आकर कहते हैं—मास्टर साहब तो

कुछ पागल हैं; न कुछ देखते हैं, न कुछ जानते हैं, न किसी बात की खोज खबर रखते हैं; सिर्फ किताबें लिये बैठे रहते हैं।

कभी-कभी ब्रज बाबू पूछते हैं—"कहो जी, नौकरी-चाकरी का कहीं कुछ हिसाब लगा?" सुरेन्द्र इसका गोलमाल जवाब देकर टाल दिया करता है। माधवी अपने पिता के मुँह से सब कुछ सुन लिया करती है। किन्तु यह बात केवल वही खूब जानती है कि मास्टर साहब नौकरी के लिए तनिक भी उद्योग नहीं करते, और उनकी नौकरी करने की तबीयत भी नहीं है। जो कुछ उन्हें प्राप्त है उसी में उनको पूरा सन्तोष है।

दस बजते ही सुरेन्द्र को नहाने और भोजन के लिए माधवी की कड़ी ताकीद होने लगती है। अच्छी तरह भोजन न करने पर माधवी की ओर से प्रमीला आकर मीठी झिड़की देती है। अधिक रात बीते तक किताब लिये बैठे रहने से ऊबकर नौकर आकर गैस की बत्ती बुझा देते हैं। मना करने से भी नहीं मानते। कहते हैं—हम क्या करें बाबू जी, बड़ी दीदी की यही आज्ञा है।

एक दिन माधवी ने पिता से मुस्करा कर कहा—बाबू जी, जैसी प्रमीला है वैसा ही मास्टर भी उसे मिला है।

ब्रज—क्यों?

माँधवी—दोनों ही निरा बच्चे हैं। जैसे प्रमीला को अभी तक इसका ज्ञान नहीं कि उसे कब किस चीज की आवश्यकता है, कब क्या खाना चाहिए, किस समय सोना चाहिए कौन समय किस काम के लिए उपयुक्त है—अपने बारे में कुछ भी नहीं सोच-समझ सकती, वही हाल उसके मास्टर साहब का भी है। वे भी अपनी कुछ फिक्र नहीं रखते; अपने बारे में, अपनी जरूरतों के बारे में कुछ भी नहीं समझते-बूझते। उस पर यह कि समय बे समय ऐसी चीज माँग बैठते हैं कि होश-हवाश जिसके सही होंगे वह आदमी कभी न माँगेगा।

ब्रज बाबू की समझ में यह बात नहीं आई। वे माधवी का मुँह ताकने लगे।

माधवी ने हँसकर कहा—आपकी लड़की (प्रमीला) कहीं समझ पाती है कि उसे किस समय क्या चीज चाहिये ?

"वह नहीं समझ पाती ?"

"और कभी-कभी किसी चीज के लिए बेसमय जिद करती, और ऊधम मचा देती है न ?"

"हाँ ऐसा तो करती है।"

"मास्टर भी ऐसा ही करते हैं—"

ब्रज बाबू ने जोर से हँसकर कहा—यह लड़का कुछ पागल-सा मालूम पड़ता है।

माधवी—पागल नहीं हैं बाबू जी, वे किसी बड़े आदमी के लड़के हैं।

ब्रज बाबू ने आश्चर्यचकित पूछा—यह तुमने कैसे जाना बेटी !

माधवी को इस बारे में कुछ भी ज्ञान न था; यह केवल उसका अनुमान था। वह बुद्धिमती थी। उसने देखा कि सुरेन्द्र अपना कोई कार्य स्वयं अपने हाथ से नहीं कर पाता; पराये का मुँह ताका करता है। दूसरा कोई करे तो काम हो, अन्यथा पड़ा रहे। उसकी यह आलसता लखकर ही माधवी जान गई कि यह जरूर किसी धनी का दुलारा पुत्र है। उसे जान पड़ता था, यह उसका पहले का अभ्यास है। खासकर इस नये तरीके की भोजन की क्रिया ने माधवी को और भी विस्मित कर दिया है। कोई भी खाने-पीने की वस्तु ऐसी नहीं होती जिसकी ओर सुरेन्द्र की विशेष रुचि प्रतीत हो। वह किसी चीज को तृप्ति-पूर्वक नहीं ग्रहण करता—उसे किसी की चाह नहीं है। यह वृद्ध का जैसा वैराग्य, पर उसके साथ ही बालक की-सी अनभिज्ञता, पागल के समान उपेक्षा का भाव—खाने को दो तो खा लेता है, और न दो तो नहीं खाता—वे

सब बातें, यह प्रकृति और प्रवृत्ति, माधवी को बहुत ही रहस्यपूर्ण प्रतीत हुई इसीलिए इस अपरिचित, अनजान मास्टर की ओर अज्ञात रूप से एक करुणा की आँख लगी रहती थी। सुरेन्द्र बहुधा कुछ माँगा जाँचा न करता था; लज्जा के कारण नहीं, उसे आवश्यकता ही नहीं होती, इससे नहीं माँगता। जब जिस किसी चीज की जरूरत होती है तब समय-कुसमय कुछ नहीं देखता—एकदम बड़ी दीदी के पास माँग पहुँच जाती है। माधवी हँसती है, अपने मन में कहती है—यह मनुष्य बिल्कुल बच्चों की भाँति सरल और भोला है।

—: o :—

चौथा परिच्छेद

मनोरमा माधवी की बचपन की सहेली और हमजोली है। बहुत दिनों से माधवी ने उसे पत्र नहीं लिखा। अपने पत्रों का उत्तर न पाकर मनोरमा रूठ गई थी। आज दोपहर के बाद थोड़ा-सा समय निकालकर माधवी अपनी सहेली को पत्र लिखने बैठी। इसी समय उसकी छोटी बहन प्रमीला ने आकर पुकारा— "बड़ी दीदी!" सिर उठाकर माधवी ने कहा—क्या है?

प्रमीला ने कहा—मास्टर साहब की ऐनक जाने कहाँ खो गई। लाओ, एक ऐनक दो।

माधवी जोर से हँस पड़ी। बोली अपने मास्टर साहब से जाकर कहो. मैं क्या ऐनक की दूकान धरे बैठी हूँ?

प्रमीला दौड़ती हुई मास्टर के पास चली। तभी माधवी ने उसे बुलाया— कहाँ जाती है?

"मास्टर साहब से यही कहने।"

"मास्टर साहब के पास जाने की जरूरत नहीं तू जाकर मुनीम जी को बुला ला।

प्रमीला मुनीम जी को बुला लाई। माधवी ने उनसे कह दिया—मास्टर साहब का चश्मा कहीं खो गया है। अच्छा-सा देखकर उनके लिए एक चश्मा ला दीजिए।

मुनीम के चले जाने पर माधवी ने मनोरमा को पत्र लिखना शुरू किया। पत्र के समाप्ति मे यह भी लिख दिया—प्रमीला को पढ़ाने-लिखाने के लिए बाबू जी ने एक अजीब मास्टर रक्खा है। उसे सयाना भी कह सकते हैं, और छोटा-सा लड़का भी। मैं समझती हूँ कि उसने

पहले-पहल परदेश में पैर रक्खा है, पहले कभी वह घर से बाहर नहीं निकला है। वह दुनिया की कोई बात भी नहीं जानता। उसकी देख-रेख करना, उसकी खबर लेते रहना बड़ा आवश्यक है; नहीं तो छन भर भी उसका काम नहीं चल सकता। वह आप अपनी सहायता करना जानता ही नहीं। मेरा अधिक समय तो वही ले लेता है। तुम को पत्र लिखूँ तो कब? इधर यदि जल्दी ही अगर तुम्हारा यहाँ आना हुआ तो मैं तुम्हें इस अनभिज्ञ आदमी के दर्शन करा दूँगी। ऐसा निकम्मा भुलक्कड़ और लापर्वाह आदमी तुमने अपनी जिन्दगी में कभी न देखा होगा। खाने को दे दो तो खा लेगा, अगर न दो तो चुपचाप भूखा-प्यासा ही रहेगा। शायद दिन भर में कभी उसे इसका ध्यान भी न होगा कि उसने भोजन किया है या नहीं! मतलब यह कि वह स्वयं एक दिन भी अपना काम नहीं कर सकता। मैं सोचती हूँ कि ऐसे विचित्र आदमी भी दुनियाँ में पड़े हैं मैं कहती हूँ, ऐसे आदमी घर छोड़कर परदेश में आते ही क्यों हैं! सुनती हूँ इस आदमी के माँ-बाप जीवित हैं, मगर मुझे तो जान पड़ता है कि उनका कलेजा पाषाण है! मैं तो, ऐसे आदमी को आँख से ओट नहीं कर सकती।

मनोरमा ने मजाक करके इस पत्र के उत्तर में लिख भेजा—तुम्हारे पत्र में और-और समाचारों के साथ यह समाचार भी पढ़ने को मिला कि तुमने अपने घर में एक अजीब बन्दर पाल रक्खा है। और, तुम उसकी सीता देवी बन बैठी हो।—मगर, फिर भी, तनिक सावधानी से रहना, यही मेरा कहना है।—इति मनोरमा।

पत्र पढ़कर माधवी के चेहरे पर कुछ लाली दौड़ गई। उसने इसके उत्तर में लिखा—तुम्हारा मुँह तो बिलकुल भाड़ है। तुम इतना भी नहीं समझती तुमको यह भी तमीज नहीं कि किसके साथ कैसी हँसी करनी चाहिए।

"प्रमीला, तेरे मास्टर साहब का यह नया चश्मा कैसा है—माधवी

ने पूछा ?

" बहुत अच्छा है दीदी ।"

"तूने यह कैसे जान लिया ?

"मास्टर साहब यह चश्मा लगाकर खूब अच्छी तरह किताब पढ़ते हैं, इसी से मैंने जान लिया कि चश्मा अच्छा है ।"

"उन्होंने स्वयं इस बारे में अच्छा बुरा कुछ नहीं कहा ?"

"नहीं ।"

"कुछ भी नहीं ? पसन्द है या नापसन्द—कुछ भी नहीं ?"

"कुछ भी नहीं कहा दीदी ।"

सदैव हँसमुख रहनेवाली माधवी का मुख-मण्डल जैसे क्षण भर के लिए मलीन हो गया । किन्तु तुरन्त ही वह भाव दूर करके उसने मुस्करा कर कहा—अपने मास्टर से कह देना कि अब फिर न कहीं खो दें ।

"अच्छा, कह दूँगी ।"

"धत् पगली, यह भी कोई कहने की बात है। उन्हें शायद बुरा लगे ।"

"तो फिर कुछ भी न कहूँगी ?"

"नहीं ।"

माधवी के बड़े भाई का नाम शिवचन्द्र था। माधवी ने एक दिन उससे कहा—दादा, प्रमीला के मास्टर दिन रात आखिर क्या पढ़ा करते हैं—तुम्हें कुछ मालूम है ?

शिवचन्द्र बी० ए० का विद्यार्थी है । उसकी दृष्टि में इस श्रेणी के छात्रों को पढ़ानेवाले मास्टरों की कुछ महत्ता ही नहीं । अतएव उसने उपेक्षा का भाव दिखाते हुए कहा—नाटक और उपन्यासें पढ़ा करता है, और क्या पढ़ेगा ?

माधवी को इस पर तनिक भी विश्वास नहीं हुआ । उसमें प्रमीला के हाथों, गुप्त रूप से, सुरेन्द्र की एक पुस्तक मँगवाकर अपने दादा के

हाथ में दी, और कहा···देखो, यह तो मुझे नाटक या उपन्यास नहीं जान पड़ता।

शिवचन्द्र ने प्रारम्भ से अन्त तक उलट-पुलट कर पुस्तक देखा, मगर वह कुछ भी समझ न सका कि कौन-सी, किस श्रेणी की पुस्तक है। उसने केवल इतना समझ लिया कि उसे इसके विषय का ज्ञान तनिक भी नहीं है, और शायद यह कोई गणित की पुस्तक है!

मगर छोटी बहन के आगे अपनी विद्वता मिटाना उसने पसन्द नहीं किया। शायद कोई भी न करेगा। बोला···यह गणित की पुस्तक है। स्कूल में छोटी कक्षाओं में पढ़ाई जाती है।

माधवी का चेहरा उतर गया। उसने फिर पूछा···यह किसी ऊँची श्रेणी की पुस्तक नहीं है? कालेज में नहीं पढ़ाई जाती?

शिवचन्द्र जैसे सूख-सा गया। मगर मुँह से उसने यही कहा···नहीं, नहीं। यह भी कोई किताब है!

शिवचन्द्र उस दिन से चौकस हो गया। वह मन ही मन डरता था कि किसी समय सुरेन्द्र उससे कोई प्रश्न न कर बैठे, कहीं इस प्रकार उसकी कलई न खुल जाय, और फिर पिता की आज्ञा से उसे भी कहीं सवेरे पहर प्रमीला के साथ ही कापी और पेंसिल लेकर इसी मास्टर के पास पढ़ने के लिए बैठना पड़े। इसी से वह सुरेन्द्र से दूर-दूर रहता था।

कुछ दिनों के पश्चात् एक दिन माधवी ने पिता से कहा...बाबू जी, मैं कुछ दिनों के लिए काशी जाना चाहती हूँ।

व्रज बाबू चिन्तित हो उठे। कहने लगे···यह कैसे हो सकता है बेटी? तुम काशी चली जाओगी तो इस घर की दशा कैसी होगी? यहाँ का काम किस प्रकार चलेगा?

माधवी ने हँसकर कहा···मैं तो लौट आने को कहती हूँ बाबू जी; हमेशा के लिए थोड़े जाऊँगी।

माधवी हँसने लगी। किन्तु उधर उसके पिता की आँखों में आँसू

भर आये। माधवी को समझ पड़ा कि उसका यह कहना ठीक नहीं था। उसने बात सँभालने के आशय से फिर कहा'''बाबू जी, मैं सिर्फ कुछ दिन ही घूम-फिरकर लौट आऊँगी।

"अच्छी बात है, हो आओ—लेकिन बेटी, यहाँ का काम कैसे चलेगा।"

"क्या मेरे बिना सब काम रुक जायँगे ?"

"काम तो न रुक जायँगे बेटी, होगा सभी कुछ। लेकिन, 'पतवार' टूट जाने पर धारा में पड़ी हुई नाव जैसे चलती है वैसे ही इस का काम भी चलता रहेगा।"

किन्तु माधवी का काशी जाना बहुत आवश्यक था। वहाँ उसकी विधवा ननद अपने एकलौते लड़के के साथ रहती है। उसे एक बार देखने जाना ही है।

माधवी ने काशी-यात्रा के दिन हर एक आदमी को अपने पास बुलाकर सबको सबके काम समझाये और उन्हें सौंप दिये। बूढ़ी नौकरानी को बुलाकर अपने पिता, भाई और बहन की सेवा करने के लिए विशेष रूप से अनुरोध किया। किन्तु मास्टर साहब की खबर रखने का काम किसी को नहीं सौंपा—उनकी देखभाल करने या उनकी ताक रखने के लिए किसी से नहीं कहा। वह भूल नहीं गई थी बल्कि जान-बूझकर ही नहीं कहा-सुना। इन दिनों वह मास्टर से कुछ चिढ़-सी गई थी। माधवी ने उसका बड़ा सत्कार किया, उसको किसी तरह का कष्ट नहीं होने दिया मगर यह कैसा पत्थर मनुष्य है, इसने जरा जबान हिलाकर भी सहानुभूति नहीं प्रकट की। इसीलिए माधवी परदेश जाकर इस असीमित संसार से अनभिज्ञ, उदासीन, उजड्ड आदमी को जता देना चाहती है कि वह भी एक नारी थी। कुछ थोड़ा-सा मजाक करने में दोष क्या है ? उसकी अनुपस्थिति में इस आदमी के दिन किस तरह कटते हैं, यह देख लेने में नुकसान क्या है ? यही कारण था कि सुरेन्द्र के सम्बन्ध में कुछ

देखने-सुनने या करने-धरने के लिए वह किसी से कुछ भी नहीं कह गई।

सुरेन्द्रनाथ एक सवाल हल कर रहा था। प्रमीला ने कहा—"बड़ी दीदी तो कल रात को काशी गई।" सुरेन्द्र के कानों को कुछ खबर ही न हुई। लेकिन दो-तीन दिन के बाद उसने देखा कि दस बजते ही खाने के लिए तकाजे पर तकाजा नहीं आता, किसी दिन एक या दो तक बज जाते हैं; नहाने के बाद धोती बदलते समय मालूम पड़ता है, अब धोती उतनी साफ नहीं है; सबेरे जलपान की वस्तुयें पहले की तरह कई तरह की और ताजी बनकर नहीं आतीं; रात को गैस की बत्ती बुझाने को कोई नहीं आता—पढ़ते-पढ़ते रात के प्रायः दो-तीन बज जाया करते हैं; तड़के जाग नहीं पाता, उठते-उठते बहुत दिन निकल आता है, दिन भर खुमारी से भरी आँखे भारी बनी रहती हैं; और शरीर में जैसे थकान-सी बनी रहती है। तब मास्टर को मालूम हुआ कि इस घर में कुछ परिवर्तन हो गया है। जब गरमी है तभी मनुष्य को पंखे की तलाश हुआ करती है। सुरेन्द्र ने पुस्तक पढ़ते-पढ़ते सिर उठाकर पूछा—बड़ी दीदी क्या आजकल यहाँ नहीं हैं प्रमीला?

"नहीं वे तो काशी गई हैं?"

"इसी लिये तो।"

दो दिन पश्चात् फिर एकाएक प्रमीला की ओर देखकर सुरेन्द्र नाथ ने कहा—बड़ी दीदी कब तक आवेंगी प्रमीला?

"एक महीने के बाद आवेंगी?"

सुरेन्द्र फिर पुस्तक पढ़ने में लीन हो गया। पाँच दिन और व्यतीत हुये। सुरेन्द्र ने पेंसिल को किताब के ऊपर रख दिया और कहा—"प्रमीला, महीने में अब कितने दिन बाकी हैं?"

प्रमीला—"अभी बहुत दिन हैं मास्टर साहब! पेंसिल उठाकर सुरेन्द्र ने ऐनक उतारी। वह उसकी गर्द पोंछकर साफ करने लगा। इसके बाद फिर ऐनक लगाकर पुस्तक की ओर ताकने लगा।

दूसरे दिन बोला—प्रमीला, बड़ी दीदी को तुम पत्र लिखती हो न ?

"हाँ लिखती क्यों नहीं हूँ।

उन्हें जल्दी चली आने के लिए नहीं लिखती तुम ?

"नहीं।"—सुरेन्द्र ने हलकी-सी साँस छोड़कर धीरे-धीरे कहा—इसीलिए तो !

प्रमीला ने कहा—मास्टर साहब, बड़ी दीदी आ जायँ तो बहुत अच्छा हो।

"हाँ, बहुत अच्छा हो।"

"आने के लिए पत्र में लिख दूँ क्या ?"

सुरेन्द्र प्रसन्न हो उठा। बोला—लिख दो।

"आपका भी समाचार लिख दूँ ?"

"लिख दो।"

"लिख दो" कहने में सुरेन्द्र को कुछ भी संकोच नहीं हुआ। क्योंकि दुनिया का कोई आचार-विचार उसका जाना न था। बड़ी दीदी से चले आने के लिए उसका अनुरोध करना रीति-विरुद्ध होगा यह बात ही उसके मन में नहीं आयी। जिसके मौजूद न होने से उसे बड़ी तकलीफ होती है, जिसके बिना उसका काम नहीं चलता, उससे आने के लिए अनुरोध करने में उसे कोई दोष नहीं दीख पड़ा।

जिस व्यक्ति में संसार के बीच कौतूहल कम है उसे सर्व-साधारण मनुष्यों के समाज से परे समझना चाहिए। जिस समाज, में साधारण मनुष्य विचरण करते हैं उस समाज में मिलकर रहना उसके लिए असम्भव होता है। साधारण लोगों के विचार से उसका विचार नहीं मिलता। सुरेन्द्र के प्रवृत्ति में कौतूहल की मात्रा बहुत ही कम थी। सुरेन्द्र की यह प्रकृति थी, कि जितना प्रयोजन होता है उतना ही जानना चाहता है। प्रयोजन की सीमा के बाहर अपनी इच्छा से वह एक कदम

भी नहीं जाना चाहता। इसके लिए वक्त भी नहीं मिलता। इसी से बड़ी दीदी के विषय में उसे कुछ भी जानकारी न थी। इस परिवार में उसके इतने दिन व्यतीत हुये, लगभग तीन महीने से बड़ी दीदी के ऊपर अपना सब भार छोड़कर वह सुख और चैन से रहा किन्तु कभी उसने नहीं पूछा कि बड़ी दीदी कैसी हैं; कितनी बड़ी हैं वे। उनकी उम्र कितनी है, वे देखने में कैसी हैं, उनमें कैसे-कैसे और कितने गुण हैं, यह कुछ भी वह नहीं जानता। कुछ जानने की उसे इच्छा ही नही हुई, इस बारे में वह पूछ-ताछ करने का कभी ध्यान ही नहीं आया। आदमी को ऐसे आवश्यक और स्नेही व्यक्ति के बारे में कुछ जानने की एक बार भी तो इच्छा होना स्वाभाविक होने पर भी सुरेन्द्र को इच्छा नहीं हुई।

सभी लोग दीदी कहते हैं, वह भी कहता है। सभी बड़ी दीदी से प्यार और आदर पाते हैं, वह भी पाता है। सबका ध्यान रखती हैं, उसका भी रखती हैं। दुनिया भर की सभी वस्तुएँ माधवी के पास रक्खी हैं, जो व्यक्ति जो कुछ चाहता वही पाता है। सुरेन्द्र भी अपने लिए आवश्यक चीजें उनसे माँग लिया करता है। इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है? बादल का काम है जल बरसाना और बड़ी दीदी का काम है लोगों का स्नेहपूर्वक आदर करना, सबकी खबर रखना। जब वर्षा होती है तो जो कोई हाथ फैलाता है उसी को पानी मिल जाता है। ठीक उसी तरह बड़ी दीदी के सामने हाथ फैलाने से सभी को इच्छानुसार पदार्थ अवश्य मिल जाता है शायद माधवी बादल के समान ही अन्ध है; उसके हृदय में न कोई कामना है न इच्छा। सुरेन्द्र ने माधवी के बारे में इसी तरह की एक धारणा रक्खी थी। आने के बाद ही उसने जो धारणा बना रक्खी थी वह आज तक वैसी ही बनी रह गई है। हाँ, इस काशी घटना के बाद से वह केवल इतना ही ज्यादा समझ पाया है कि बड़ी दीदी के बिना उसका गुजारा घड़ी भर भी नहीं हो सकता।

जब सुरेन्द्र अपने घर पर था तब अपने पिता और विमाता को जानता

था। उसका कर्त्तव्य क्या है, यह भी खूब समझता था। किन्तु वहाँ बड़ी दीदी की पदवी के योग्य किसी भी व्यक्ति से उसका परिचय न था। यहाँ आकर जब परिचय हुआ तब उसको यों ही जान लिया। वह बड़ी दीदी नाम की अधिकारी की सूरत से परिचित नहीं है। वह नहीं जानता कि बड़ी दीदी का आकार-प्रकार कैसा है। वह केवल नाम ही जानता-पहचानता है। नाम का अधिकारी मनुष्य उसका कोई नहीं, केवल नाम ही सब कुछ है।

लोग जिस प्रकार अपने इष्टदेव के वास्तविक रूप को नहीं देख पाते, केवल उसके नाम को लिखे रखते हैं, नाम ही को जपा करते हैं, दुःख और कष्ट में उसी नाम को स्मरण कर उसके आगे अपना हृदय खोलकर रख देते हैं, घुटने टेक कर दया की याचना करते हैं—स्नेह की भीख माँगते हैं, आँखों में आँसू आ जाते हैं तो उन्हें पोंछ कर शून्य दृश्य से जैसे किसी को देखना चाहते हैं किन्तु कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता, जीभ केवल दो-एक अस्पष्ट शब्द ही उच्चारण करके रुक जाती है; ठीक उसी तरह सुरेन्द्र ने भी दुःख-कष्ट पाकर अस्पष्ट स्वर में उच्चारण किया—"बड़ी दीदी।"

—: ० :—

पाँचवाँ परिच्छेद

पूर्व दिशा में लाली फैल चली थी। अभी सूर्योदय नहीं हुआ था, केवल प्रमीला ने आकर सोते हुये सुरेन्द्रनाथ के गले लिपटकर कहा—"मास्टर साहब!" सुरेन्द्र ने आलस्य से बन्द हुई जा रही आँखें खोलकर कहा—क्या है प्रमीला?

प्रमीला ने कहा—"बड़ी दीदी आ गई मास्टर साहब!" सुरेन्द्र उठ बैठा। प्रमीला का हाथ पकड़कर बोला—चलो, देख आवें उन्हें।

न जाने यह देखने की इच्छा उसके मन में कैसे उत्पन्न हुई। समझ में नहीं आता कि इतने दिनों बाद आज प्रमीला का हाथ पकड़कर आँखें मींचते-मींचते वह क्यों भीतर की ओर चल पड़ा। किन्तु कारण चाहे जो हो, वह प्रमीला का हाथ पकड़े घर के भीतर दाखिल हुआ। इसके बाद सीढ़ियों पर चढ़कर ऊपर छत पर आया। माधवी के कमरे के बाहर, दरवाजे के समीप खड़े होकर उसने पुकारा—बड़ी दीदी!

माधवी का ध्यान दूसरी ओर था, शायद वह कोई काम कर रही थी। उसने अभ्यास-वश प्रमीला को जान कर उत्तर दिया—क्या है?

प्रमीला ने कहा—मास्टर साहब आये हैं।

प्रमीला और सुरेन्द्र भीतर दाखिल हो चुके थे। माधवी यह देखकर हड़बड़ाकर उठी। लम्बा घूँघट निकाल कर वह एक ओर सिमट कर खड़ी हो गई। सुरेन्द्र ने कहना शुरू किया "बड़ी दीदी, तुम्हारे न रहने के कारण मुझे बड़ा कष्ट हुआ" माधवी ने घूँघट के भीतर ही लज्जा के मारे दाँतों से जीभ काटकर मन ही मन कहा...छी छी!...

"तुम्हारे चले जाने के कारण..."

माधवी ने अपने मन में कहा...कैसी शर्म की बात है ! फिर धीरे-धीरे कहा...प्रमीला, मास्टर साहब से कह दे, बाहर हो जावें।

प्रमीला नादान बालिका होने पर भी अपनी बहन का व्यवहार देखकर इतना समझ गई कि यह काम ठीक नहीं हुआ है। उसने कहा... बाहर चलिये मास्टर साहब...

सुरेन्द्र कुछ देर मूर्तिवत खड़ा रहा ! इसके बाद बोला—"चलो।" वह इससे अधिक कुछ कहना ही न जानता था। उसने अधिक बातचीत नहीं की। बात यह थी कि दिन भर बादल घिरे रहने के बाद सूर्य के निकलने पर जैसे एकाएक उधर लोगों की दृष्टि उठ जाती है—क्षण भर के लिए जैसे सुध ही नहीं रहती कि सूर्य की ओर ताकना नहीं चाहिए, या उधर ताकने से आँखों में पीड़ा होने लगेगी, इसका ध्यान नहीं रहता—ठीक वैसे ही सुरेन्द्र भी महीने भर परदेश में रहने के बाद आई हुई बड़ी दीदी को बड़ी प्रसन्नता और चाव से देखने गया था। उसे यह नहीं मालूम था कि इसका फल ऐसा होगा।

उसी दिन से सुरेन्द्र को सम्मान में कुछ कमी देख पड़ने लगी। माधवी को जैसे कुछ झेंप-सी लगी। बिन्दो मौसी इस बात पर शायद एक दिन कुछ हँसी भी कर बैठी थीं। सुरेन्द्र भी कुछ संकुचित हो गया। आजकल सुरेन्द्र को देख पड़ने लगा कि बड़ी दीदी का असीम भण्डार जैसे कुछ सीमित हो गया है। बहन का प्यार और माता का वात्सल्य जैसे अब उसको स्पर्श ही नहीं करता—दूर ही दूर रहकर हट जाता है।

एक दिन सुरेन्द्र ने प्रमीला से यह पूछा—जान पड़ता है, बड़ी दीदी आजकल मुझ पर नाराज हैं। क्यों न ?

"जी हाँ।"

"भला क्यों ?"

"आप उस दिन घर के भीतर क्यों चले गये थे ?"

"क्या भीतर नहीं जाना चाहिए ?"

"इस तरह कहीं कोई चला जाता है? दीदी बहुत ही नाराज हैं।"

सुरेन्द्र ने पुस्तक बन्द करते हुए कहा—वही तो—

एक दिन दोपहर के समय बादल घिर आये और बड़े वेग से पानी बरसने लगा। ब्रजराज बाबू आज दो दिन से घर में उपस्थित नहीं हैं, इलाके पर दौरा करने गये हुये हैं। माधवी को कुछ काम न करना था वह फुरसत में थी। प्रमीला ऊधम मचा रही थी। माधवी ने उसे डाँट कर कहा...जा, अपनी किताब ला। देखूँ तूने कितना पढ़ा-लिखा है।

प्रमीला सिटपिटा गई। माधवी ने फिर कहा...किताब लाती क्यों नहीं?

प्रमीला ने बचाव के लिए कहा—दिदिया, रात को पूछ लेना, अभी मुझे खेलने दो।

माधवी ने कहा...नहीं, एकदम अभी ला।

अत्यन्त दुःख के साथ प्रमीला किताब लेने गई। किताब लाकर बोली—"मास्टर साहब तो आजकल कुछ पढ़ाते ही नहीं, वे स्वयं ही पढ़ा करते हैं।" माधवी पिछला पाठ पूछने लगी। आदि से अन्त तक बहुत से प्रश्न करने पर उसको मालूम हो गया कि मास्टर ने सचमुच कुछ पढ़ाया-लिखाया नहीं है। उलटे प्रमीला को पहले जो कुछ पढ़ाया-लिखाया गया था वह भी, मास्टर रखने के बाद इन तीन-चार महीनों में, धीरे-धीरे सब कुछ भूल गया है। माधवी ने खीजकर बिन्दो को आवाज दी और कहा...जाकर मास्टर साहब से पूछ आ कि उन्होंने इतने दिन तक क्या किया-धरा जो प्रमीला को एक भी अक्षर नहीं पढ़ाया उन्होंने, क्यों?

बिन्दो जिस समय पूछने गई उस समय सुरेन्द्र एक प्रश्न लगा रहा था—उसे हल करने में परेशान था। बिन्दो ने पूछा—"मास्टर साहब बड़ी दीदी कहती हैं कि आपने छोटी बिटिया को अभी तक कुछ पढ़ाया क्यों नहीं?" मास्टर साहब ने जैसे सुना ही नहीं। अब की बिन्दो ने तेज आवाज से पुकारा—मास्टर साहब!

"क्या है ?"

"बड़ी दीदी यह कहती हैं—"

"क्या कहती हैं ?"

"छोटी बिटिया को आपने अभी तक कुछ पढ़ाया क्यों नहीं।"

निश्चिन्त-सा हो रहा सुरेन्द्र ने उत्तर दिया—"मुझे पढ़ाना अच्छा नहीं लगता।" बिन्दो ने कहा—वाह वाह ! उसने जाकर माधवी से यह सब कह दिया। माधवी को क्रोध चढ़ आया। उसने नीचे आकर किंवाड़े की आड़ में खड़ी हो बिन्दो से कहलाया—"आपने प्रमीला को बिलकुल कुछ पढ़ाया ही नहीं, यह क्यों ?" दो-तीन बार यही प्रश्न करने के बाद उत्तर मिला—मुझसे यह न हो सकेगा।

माधवी ने मन में सोचा, यह कैसी बात है !

बिन्दो ने फिर पूछा—तो फिर आप यहाँ किसलिए हैं ?

"यहाँ न रहूँ तो कहाँ जाऊँ ?"

"तो फिर आप पढ़ाते क्यों नहीं ?"

अब सुरेन्द्र को कुछ होश आया। उसने ध्यान देकर कहा—"हाँ, क्या कहा ?" बिन्दो इतनी देर से जो कुछ कह रही थी वही फिर एक बार दुहरा दिया। तब सुरेन्द्र ने कहा—प्रमीला तो रोज पढ़ती ही है।

"वह तो पढ़ती ही है; लेकिन आप क्या देखते हैं ?"

"मुझे देखने-भालने का समय नहीं मिलता।"

"तो फिर घर में आप रहते किसलिए हैं ?" सुरेन्द्र चुपचाप होकर सोचने लगा।

"तो आप उसे पढ़ा न सकेंगे ?"

"नहीं, पढ़ाना मुझे अच्छा नहीं लगता अब।"

माधवी ने भीतर से स्वयं ही कहा—"पूछो तो बिन्दो, फिर इतने दिनों से झूठ बोलकर यहाँ क्यों रहते थे ?" बिन्दो ने यही कहा। यह सुनकर सुरेन्द्र की गणित की समस्या का जाल एकदम छिन्न-भिन्न हो

गया। उसे थोड़ा-सा दुःख हुआ। दम भर सोचकर उसने कहा—वही तो! बड़ी भूल हुई मुझसे।

"चार महीने से लगातार बराबर भूल ही होती रही आपसे?"

"हाँ, वही तो दिखाई पड़ता है। असल में बात यह है कि इस ओर मेरा उतना ध्यान ही नहीं था।"

दूसरे दिन प्रमीला सुरेन्द्र से पढ़ने नहीं आई। सुरेन्द्र ने भी उस ओर ध्यान नहीं दिया। उसके बाद तीन दिनों तक वह अनुपस्थित ही रही। वह दिन भी यों ही गुजर गया।

तीसरे दिन प्रमीला को न देखकर सुरेन्द्र ने एक नौकर से कहा—प्रमीला को बुला लाओ।

नौकर ने भीतर से आकर कहा—वह अब आप से नहीं पढ़ेंगी।

"तो किससे पढ़ेंगी अब वह?"

नौकर ने कहा—अब नया मास्टर रक्खा जायगा।

नव बज चुके थे। उस समय कुछ देर तक सोच-विचार कर सुरेन्द्र ने दो-तीन किताबें उठाकर बगल में दबाई और चल पड़ा। चश्मा उतार कर टेबिल पर रख दिया और फिर धीरे-धीरे चल दिया।

उसे जाते देखकर नौकर ने पूछा—मास्टर साहब, इस समय आप कहाँ जा रहे हैं?

"बड़ी दीदी से कह देना—मैं जा रहा हूँ।"

"तो अब आप नहीं आवेंगे?"

सुरेन्द्र ने यह प्रश्न ही न सुना। बिना कुछ उत्तर दिये वह फाटक के बाहर हो गया। दोपहर के दो बज गये, मगर सुरेन्द्र लौटकर घर नहीं आया तब नौकर ने आकर माधवी को खबर दी कि मास्टर साहब चले गये।

"कहाँ चले गये?"

"यह तो मैं नहीं जानता। नव बजे के वक्त गये हैं। जाते वक्त मुझसे कह गये थे कि बड़ी दीदी से कह देना, मैं रहा जा रहा हूँ।"

"यह क्या ! बिना खाये-पिये ही चले गये वे ?"

माधवी का मन चिन्तित हो उठा। उसने खुद सुरेन्द्र की कोठरी में आकर देखा, सब सामान उसी तरह रक्खा हुआ है। मेज के ऊपर चश्मा तक रक्खा है। कुछ किताबें नहीं हैं।

शाम हो गई। रात हो गई मगर सुरेन्द्र लौटकर न आया। दूसरे दिन माधवी ने दो नौकरों को पास बुलाकर कहा—"तुम अगर मास्टर को खोजकर लौटा लाओगे तो तुम्हें दस रुपये इनाम मिलेंगे।" इनाम की लालच में नौकर दौड़-धूप में लग गये। किन्तु उस दिन शाम को आकर उन्होंने कहा—कहीं पता नहीं लग रहा है।

प्रमीला ने रोते हुए कहा—बड़ी दिदिया, मास्टर साहब चले क्यों गये ?

माधवी ने उसे बहलाते हुए कहा—बाहर जा खेल, रोती क्यों है ?

धीरे-धीरे दिन बीतने लगे। जितने दिन बीतते जाते थे उतनी ही माधवी की आकुलता बढ़ती जाती थी। बिन्दो ने कहा—बड़ी दीदी, जाने भी दो। इतना ढूँढ़ने की जरूरत ही क्या है ? इतने बड़े कलकत्ते शहर में क्या कोई दूसरा मास्टर ही न मिलेगा ?

माधवी ने बिगड़कर कहा—दूर हो जा, यहाँ से ! एक आदमी, जिसके पास एक पैसा भी नहीं है खाली हाथ चला गया और तू कहती है, उसके ढूँढ़ने की क्या जरूरत है ?

"यह कैसे जाना कि उनके पास एक पैसा भी नहीं है ?"

"मैं खूब जानती हूँ। तुझे इन बातों से क्या सरोकार. जा अपना काम कर।"

बिन्दो चुप रह गई। जब सात दिन बीत गये और सुरेन्द्र लौटकर न आया, न उसका कुछ पता ही चला तब माधवी खाना-पीना छोड़ बैठी। उसे लगता था कि सुरेन्द्र भूखा-प्यासा कहीं इधर-उधर मारा-मारा फिरता होगा। जो आदमी घर में भी कोई चीज माँगकर खाना नहीं

जानता वह किसी अनजान से, किसी गैर से, किस तरह कुछ माँग सकता है ? माधवी की यह पक्की धारणा थी कि सुरेन्द्र के पास कुछ खरीदकर खाने-पीने के लिए धेला-पैसा भी नहीं है; साथ ही भीख माँगकर पेट भर लेने का हुनर भी नहीं है; इसीलिए वह छोटे बच्चे की भाँति असहाय अवस्था में, शायद किसी पटरी के ऊपर, सड़क के किनारे बैठा रोता होगा, या किसी पेड़ के तले सिरहाने किताबें रखकर पड़ा सो रहा होगा।

व्रजराज बाबू ने घर लौटकर यह सब हाल सुना। उन्होंने माधवी से कहा—"काम तो यह ठीक नहीं हुआ बेटी।" माधवी ने बड़ी कठिनाई से उमड़े हुए आँसुओं को रोका।

इधर सुरेन्द्र का क्या हाल रहा, वह भी सुनिए तीन दिन तो उसने घूम-फिरकर भूखे रहकर बिताये। पैसा पास न होने पर भी बम्बे का पानी मुफ्त मिल सकता है। इसी से भूख जब जोर जान पड़ती थी तब वह चुल्लू लगाकर भर पेट बम्बे का पानी पी लिया करता था।

एक दिन रात को वह कालीघाट की ओर जा रहा था। हाथ-पैरों में शक्ति न थी, सारा शरीर सूख रहा था, फिर भी वह बढ़ा जा रहा था। उसने किसी से यह सुना था कि वहाँ खाने को मिलता है। एक तो अँधेरी रात थी, उस पर बादल घिरे हुए थे। चौरंगी के मोड़ पर पहुँचते ही उसके ऊपर एक गाड़ी आ पहुँची, खैरियत यह हुई कि गाड़ी के कोचवान ने किसी तरह जल्दी से रास खींचकर घोड़ों को रोक लिया। इससे सुरेन्द्र की जान बच गई। लेकिन फिर भी उसकी छाती और पसलियों में गहरी चोट लगी। सुरेन्द्र वहीं बेहोश होकर पड़ा रहा। पुलिस के एक सिपाही ने उसे एक मोटर में लादकर अस्पताल पहुँचाया। चार-पाँच दिन बेहोशी की हालत में पड़े रहने के पश्चात् छठे दिन, रात को, आँखें खोलते ही पहले उसके मुँह से यही शब्द निकला—बड़ी दीदी !

मेडिकल कालेज का एक विद्यार्थी उस रात को अस्पताल में ड्यूटी पर था। यह शब्द सुनते ही उसके पास आ गया। उससे सुरेन्द्र ने पूछा—बड़ी दीदी आई हैं क्या ?

उत्तर मिला—बड़ी दीदी कल तड़के आवेंगी।

उसके दूसरे दिन सुरेन्द्र अच्छी अवस्था में रहा; किन्तु उसने फिर बड़ी दीदी के बारे में कुछ नहीं पूछा। वह दिन भर तेज बुखार में पड़ा तड़पता रहा। शाम होने पर एक आदमी से उसने पूछा—क्यों जी, क्या मैं अस्पताल में हूँ ?

"जी हाँ।"

"क्यों ?"

"आप एक गाड़ी के नीचे आ गये थे।"

"भला मेरे बच जाने की आशा है !"

"जी, पूरी आशा है।"

दूसरे दिन मेडिकल कालेज के उसी विद्यार्थी ने, जिससे पहले दिन प्रश्नोत्तर हुआ था, पास आकर सुरेन्द्र से पूछा—यहाँ आपका कोई अपना जान-पहचानी भी है कहीं ?

"कोई नहीं है।"

"फिर उस दिन, रात को, आप किसे पुकार रहे थे ? क्या वे यहीं कहीं रहती हैं ?"

"हैं तो अवश्य पास ही लेकिन वे इस जगह आ नहीं सकतीं। अच्छा, क्या आप मेरे पिता जी को मेरी खबर पहुँचा सकते हैं ?"

"जी पहुँचा सकता हूँ।"

सुरेन्द्र ने पिता का पता बता दिया। उस छात्र ने उसी दिन पत्र लिखकर डाक में डाल दिया। इसके बाद बड़ी दीदी का पता ठिकाना लगाने के लिए उसने फिर पूछा—यहाँ औरतें भी आ सकती हैं। हम लोग परदेवाली औरतों के लिए प्रबन्ध कर देते हैं। आपकी बड़ी बहन का पता मालूम हो जाय तो मैं उनको भी खबर दे सकता हूँ।

सुरेन्द्र ने कुछ देर तक सोचकर ब्रजबाबू का पता-ठिकाना बता दिया।

वह छात्र बोला—मेरा घर ब्रज बाबू के घर के पास ही है। मैं आज ही उन्हें आपका समाचार बतलाऊँगा। अगर उनकी इच्छा होगी तो वे देखने आवेंगी।

सुरेन्द्र आगे कुछ नहीं बोला। उसने अपने मन में समझ लिया था कि बड़ी दीदी का यहाँ आना बिल्कुल असम्भव है। उस छात्र ने दया करके ब्रज बाबू को तुरन्त खबर दे दी। ब्रज बाबू यह सुनकर चौंक उठे। उन्होंने घबरा कर पूछा—वह बच तो जायगा न?

छात्र ने कहा—यह तो निश्चित है कि उनकी जान के लिए कोई खतरा नहीं है।

ब्रज बाबू ने भीतर जाकर माधवी से कहा—बेटी मैं जो सोच रहा था हुआ वही। सुरेन्द्र गाड़ी के नीचे कुचल गया है। इस समय वह अस्पताल में है।

सुनते ही माधवी के अंग-प्रत्यंग सिहर उठे। पिता ने कहा—"सुना है, उसने होश आते ही बड़ी दीदी कहकर पुकारा था। क्या तुम उसे देखने नहीं जाओगी?" इसी समय पास के कमरे में प्रमीला ने न जाने क्या गिरा दिया। उसकी आवाज सुनकर माधवी उधर चली गई। कुछ देर बाद लौटकर उसने पिता से कहा—तुम देख आओ बाबू जी; मैं वहाँ न जाऊँगी।

ब्रज बाबू ने दुःखित होकर कुछ मुस्कराते हुए कहा—वह तो बिल्कुल जंगली जानवर के समान है—उस पर क्रोध करना भी बिलकुल बेकार है।

माधवी कुछ बोली नहीं। ब्रज बाबू अकेले ही सुरेन्द्र को देखने चले गये। उसकी दशा देखकर उन्हें बड़ा खेद हुआ। उन्होंने कहा—अच्छा हो सुरेन्द्र, तुम्हारे माता-पिता को यह खबर दे दी जाय? तुम्हारी इच्छा क्या है?

"वहाँ खबर भेज दी गई है।"

"अब कुछ डर नहीं है। तुम घबराना मत। जल्दी ही चंगे हो जाओगे। तुम्हारे माँ-बाप के आते ही मैं तुमको यहाँ से ले चलने का प्रबन्ध करूँगा।"

ब्रज बाबू ने घर आकर माधवी को सारा हाल बताया।

उसी दिन से नित्य ब्रज बाबू एक बार सुरेन्द्र को देखने अस्पताल जाने लगे। सच तो यह है कि सुरेन्द्र के ऊपर उन्हें एक प्रकार का स्नेह हो गया था, वे उसको स्नेह की दृष्टि से देखने लगे थे। एक दिन अस्पताल से लौटकर उन्होंने माधवी से कहा—माधवी, तेरा अनुमान ठीक निकला। सुरेन्द्र के पिता तो धनी व्यक्ति हैं।

माधवी ने पूछा—आपको यह कैसे मालूम हुआ बाबू जी?

"उसके पिता एक नामी वकील हैं। वे कल रात को आ गये हैं।"

माधवी चुप हो गई। पिता ने फिर कहा—सुरेन्द्र अपने घर से भाग कर यहाँ आया था।

ऐसा क्यों?

ब्रज०—उसके पिता से आज मेरी बात चीत हुई। उन्होंने सारा हाल बताया। इसी वर्ष यू० पी० के विश्वविद्यालय में आनर्स के साथ एम० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ है। इसके पश्चात् उसने विलायत जाकर विद्याध्ययन करने की इच्छा प्रकट की तो पिता और माता, दोनों ने इसे नामंजूर किया। सुरेन्द्र के नाराज होकर घर से भाग खड़े होने का यही प्रमुख कारण हुआ। पिता का इरादा है कि आराम होते ही पुत्र को वे घर ले जायँगे।

उभरती रही साँस को दबाकर, और उमड़े हुए आँसुओं को पीकर माधवी ने कहा—यही अच्छा होगा।

छठवाँ परिच्छेद

सुरेन्द्र को कलकत्ते से लौटकर अपने घर गये छः महीने हो गये। इस बीच में माधवी ने अपनी सखी मनोरमा को केवल एक ही पत्र लिखा था, फिर नहीं लिखा।

क्वार में दुर्गा-पूजा के शुभ अवसर पर मनोरमा मैके आई। वह आते ही माधवी के पीछे हाथ धोकर पड़ गई। बोली—अपना वह बन्दर तो दिखा।

माधवी ने हँसकर उत्तर दिया—बन्दर कहाँ से लाऊँ री?

मनोरमा ने माधवी की ठोढ़ी हिलाकर कहा—मैं तो यही देखने यहाँ दौड़ी आई हूँ कि तेरे इन रँगीले श्रीचरणो के पास निवास करने वाला वह तकदीर का सिकन्दर बन्दर कैसा है।—वही, जिसे तूने पाल रक्खा था?

"कब पाला था रे?"

मनोरमा ने मन्द हास के साथ परिहास के स्वर में कहा—क्या याद नहीं है? अरे वही, जो तेरे सिवा और किसी को जानता ही न था!

मनोरमा के आशय को माधवी पहले ही ताड़ गई थी, इसी से धीरे-धीरे उसके चेहरे का रंग उड़ता-सा जा रहा था। तो भी अपने को सँभालकर वह बोली—ओह, मास्टर साहब को पूछती है? वे तो अपने आपसे चले गये।

ऐसे रंगीन श्रीचरण भी उसे नहीं मन भाये?

माधवी ने दूसरी ओर मुँह फेर लिया, कुछ बोली नहीं। मनोरमा ने आदर और प्यार के साथ हाथ से सहेली का मुँह अपनी ओर फेरा। उसने देखा, उसकी इस दिल्लगी से सहेली की आँखों में आँसू उमड़

आये हैं। मनोरमा ने आश्चर्य-चकित होकर पूछा—माधवी यह क्या?

अब और अधिक अपने को सँभालना माधवी के लिए असम्भव-सा हो गया। वह आँखों में आँचल लगाकर रो पड़ी।

मनोरमा के विस्मय की सीमा नहीं रही। सहेली को सान्त्वना देने के लिए एक शब्द भी उसे न सूझ पड़ा। उसने कुछ देर तक माधवी को रोने दिया। इसके बाद जबरदस्ती मुँह पर से आँचल खींचकर अत्यन्त दुःख के साथ उसने कहा—तुम तो मामूली दिल्लगी में ही रोने लगीं बहन! मैं न जानती थी कि इतनी-सी हँसी-दिल्लगी भी तुम नहीं सह सकोगी।

माधवी ने अपनी आँखें पोंछते हुए कहा—"मैं विधवा जो हूँ बहन!" इसके बाद दोनों चुप हो रहीं। दोनों सहेलियाँ अपने-अपने मन में रो रही थीं। मनोरमा रोती थी माधवी के दुःख से—उसकी विधवावस्था की वेदना का अनुभव करके। किन्तु माधवी क्यों रो रही थी? उसके रोने का कारण कुछ और ही था। इस समय बिना जाने-बूझे मनोरमा ने जो मजाक किया कि 'वह तेरे सिवा और किसी को नहीं जानता था' वही माधवी के मन को दले डालता था। माधवी खूब अच्छी तरह जानती थी कि यह बात सोलहो आने सत्य है।—बहुत देर के बाद मनोरमा बोली—लेकिन काम तो यह अच्छा नहीं हुआ बहन!

"कौन सा काम?"

"यह भी क्या बताने की जरूरत है? मैं सब समझ गई हूँ!"

इतने दिनों से—लगभग छः महीने से—जिस बात को, जिस घने रहस्य को माधवी जी-जान से छिपाये हुए थी उसे आज मनोरमा के आगे छिपाना कठिन हो गया। छिपाने में असमर्थ होने से पकड़ी जाकर माधवी आँचल से अपना मुँह ढककर रोने लगी—बच्चे की तरह फूट-फूटकर!

अन्त को मनोरमा ने कहा...लेकिन यह तो बता, वह चला क्यों गया आखिर?

"मैंने ही उसे चले जाने के लिए कहा था।"

"बहुत अच्छा किया, खूब बुद्धिमानी का काम किया है तुमने।"

माधवी ने देखा, वास्तव में मनोरमा कुछ भी नहीं समझ पायी। यह जानकर माधवी ने उसे एक-एक करके आदि से अन्त तक सारी बातें समझा दीं। इसके उपरान्त कहा—"लेकिन बहन, अगर कहीं मास्टर साहब न बचते तो शायद मैं पागल हो जाती।" मनोरमा ने अपने मन में कहा—इस समय पागल होने में कोर कसर ही क्या है?

उस दिन बहुत ही दुःखित हृदय लिये मनोरमा अपने घर को वापस गई। उसी दिन, रात के समय कागज-कलम लेकर मनोरमा अपने पति को पत्र लिखने बैठी। पत्र में लिखा—

"तुम ठीक ही कहते थे कि स्त्री-जाति का कुछ विश्वास नहीं। मैं भी आज इसी को दुहराती हूँ। क्योंकि आज माधवी ने मुझको यहाँ शिक्षा दी है। मैं उसे बचपन से जानती हूँ। वह मेरी साथ-खेली पढ़ी सहेली है। मैं उसके रग-रेशे तक से वाकिफ हूँ, इसी लिए उसे दोष देने की इच्छा नहीं होती। ऐसा करने की हिम्मत नहीं पड़ती मुझे कि समूची स्त्री-जाति को दोष दूँ। मैं तो विधाता को ही दोषी ठहराऊँगी। उन्होंने क्यों नारी के हृदय को इतना कोमल बनाया? नारी-हृदय की रचना जल जैसे पदार्थ से क्यों की है? भगवान ने नारी के सरल हृदय में इतना अधिक स्नेह, प्यार और प्रेम लबालब क्यों भर दिया? किसने ऐसा करने के लिए उनकी प्रार्थना की थी? चतुर चतुरानन के चरणों में मेरी तो अब यही प्रार्थना है कि भविष्य में स्त्री के हृदय को जरा जोरदार और कठिन बनाया करें। और, तुम्हारे श्रीचरणों में मेरी यह प्रार्थना है कि मैं इन्हीं पूज्य चरणों में सिर रखकर सानन्द सस्नेह प्यार मुखारविन्द देखते-देखते मृत्यु का सौभाग्य प्राप्त कर सकूँ। माधवी को देखने से बड़ा भय लगता है। उसने मेरी जिन्दगी भर की धारणा—बद्धमूल विश्वास को उलट-पुलट दिया है। सच मानो, मेरा भी बहुत अधिक विश्वास न करना। शीघ्र ही आकर अपने साथ ले जाओ।—"

यथासमय यह पत्र मनोरमा के पति ने पाया। उसने इसके उत्तर में यह लिख भेजा—

"जिसके रूप है वह उसे दिखावेगा ही। जिसके गुण है वह उसे प्रकट करेगा ही! जिसके हृदय में प्रेम-प्रीति है, जो प्यार करना जानता है वह प्यार अवश्य करेगा ही। माधवीलता रसाल वृक्ष का आश्रय लेती है, उससे लिपटती है। यही दुनिया की रीति है। इसके लिए तुम या मैं ही क्या कर सकता हूँ! तुम्हारा मैं खूब विश्वास करता हूँ—उसके लिए तुम कुछ चिन्ता मत करना।—"

मनोरमा ने पति का पत्र पाकर पढ़कर माथे से स्पर्श किया और पूज्य पति के पैरों में मानसिक प्रणाम उसके उत्तर में लिख दिया—

"माधवी कुल-कलङ्किनी है; विधवा को जो न करना चाहिए वही उसने किया। वह मन में अन्य एक आदमी को प्यार करती है।"

यह पत्र पाकर मनोरमा का पति मन ही मन खूब हँसा। फिर उसने मजाक करते हुए उत्तर में लिख दिया—"माधवी के कुल-कलङ्किनी होने में कुछ सन्देह नहीं। क्योंकि विधवा होकर भी वह मन में और एक आदमी को चाहने लगी है। तुम लोगों के नाराज होने की बात ही है—विधवा होकर वह क्यों तुम सब सधवाओं के अधिकार में हाथ डाले। किन्तु मैं जब तक जीवित हूँ तब तक तुम्हें कुछ चिन्ता न करना चाहिए। यह अच्छा अवसर है; इस मौके में तुम बड़े आनन्द और आराम से किसी और एक आदमी को मन ही मन प्यार कर लो। सच पूछो तो तुम यह नई खबर देकर मुझे विस्मित नहीं कर सकीं मनोरमा। मैंने एक जगह लता देखी है। वह एक मील तक पृथ्वी में फैलती और लिथड़ती हुई अन्त में जाकर एक पेड़ से लिपट कर उसके ऊपर चढ़ गई है। इस समय वह कितने ही पत्तों, पल्लवों और पुष्पों से लदी हुई है। तुम जब यहाँ आओगी तब हम दोनों चलकर उसे देख आवेंगे।"

मनोरमा ने खीझकर इस पत्र का कोई उत्तर नहीं दिया।

इधर माधवी दिनों-दिन दुबली पीली होती आ रही थी। आँखों के नीचे स्याह दाग स्पष्ट दिखाई देने लगे लगे थे। खिला हुआ मुखड़ा मुरझाया हुआ था। काम-काज में वह चेतना, वह उत्साह और वह फुर्ती अब नहीं थी—कुछ-कुछ ढिलाई और शिथिलता दीख पड़ती थी। सबकी खबर रखने, सबको आदर-यत्न-सेवा आदि से सन्तुष्ट देखने का चाव चित्त में वैसा ही था, बल्कि और अधिक ही हो गया था था; किन्तु काम-काज करने में प्रायः भूल-चूक हो जाती थी। पहले जैसे माधवी किसी काम में गड़बड़ी नहीं होने देती थी, यथा समय हर काम करने की याद रखती थी, यह बात अब नहीं रही है; प्रायः भूल हो जाया करती है, खयाल ही नहीं रहता।

अभी तक सभी उसे आदर से बड़ी दीदी कहते हैं, अब भी सभी आश्रित लोग उसी कल्पलता रमणी-रत्न का मुँह ताकते हैं, उसके आगे विनय से हाथ फैलाते हैं, और अभीष्ट फल पाते हैं; किन्तु वह तरुणी-लता अब वैसी हरी-भरी, शक्तिमान तथा सरस नहीं है। वृद्ध लोगों के मन में कभी-कभी यह आशङ्का उठ खड़ी होती है कि कहीं यह लता कुम्हला कर सूख न जाय।

मनोरमा अब भी नित्य आती-जाती है। और अनेक बातें होती रहती हैं, केवल वही— मास्टर की—चर्चा नहीं होती। माधवी को इससे क्लेश होता है, और यह बात मनोरमा से छिपी भी नहीं रहती। वह सोचती है, अब इस विषय की बातचीत न करना ही बेहतर होगा। मनोरमा यह भी सोचती कि यह अभागिन यदि इसी तरह उसे भूल जाय तो भला हो।

आराम होने पर सुरेन्द्र पिता के साथ घर वापस चला गया। अब सौतेली माँ उसकी देख-भाल कुछ-कुछ करने लगी। इसी से सुरेन्द्र के शरीर को कुछ-कुछ आराम प्राप्त होने लगा। लेकिन शरीर अच्छी तरह स्वस्थ नहीं हुआ। इसका कारण था कि हृदय के भीतर एक काँटा खटकता रहता है, जिसकी वेदना बहुत अखरती है। रूप और यौवन

की इच्छा या रस की प्यास अभी तक उसके हृदय में उत्पन्न नहीं हुई है। इन बातों का विचार उसके मन में नहीं उठता। पहले ही की तरह इस समय भी वह निकम्मा रहता है, स्वावलम्ब नहीं, सीख सका है। किसके भरोसे रहना चाहिए, कौन उसकी देख-भाल रखने के लिए खुशी से तैयार हो सकेगा, यह अभी तक उसे नहीं जान पड़ता। समक्ष न पड़ने पर लाचार होकर अपना काम आप कर लेने वाला व्यक्ति भी वह नहीं। इसमे वह दूसरे का मुँह ताकता रहता है। फ़र्क केवल इतना ही हो गया है कि अब पहले की तरह बेमन व्यर्थ कर दिया गया काम उसे भाता नहीं; सभी कामों में उसे कुछ न कुछ कोर कसर देख पड़ती है, मन ही नहीं भरता। उसकी सौतेली माता यह सब देख कर कहा करती हैं—सुरेन्द्र जैसे आजकल बदल-सा गया है।

एक दिन बीच में सुरेन्द्र को ज्वर चढ़ आया था। बड़ा कष्ट मिला। आँखों में आँसू आ गये। विमाता समीप ही बैठी थीं। उन्होंने एक नई बात देखी। उसी समय उनकी आँखों में भी आँसू आ गये। उन्होंने प्यार से लड़के के आँसू पोंछते हुए कहा—"बेटा सुरेन्द्र क्या बात है?" सुरेन्द्र चुप रहा। इसके पश्चात् उसने एक पोस्टकार्ड माँगा। उसमें उसने टेढ़े-मेढ़े अक्षरों से लिख दिया—बड़ी दीदी, मुझे ज्वर चढ़ आया है, बड़ा कष्ट मिल रहा है।

किन्तु मनमें वह पत्र डाकघर तक नहीं पहुँचा। पहले पलंग से फ़र्श पर गिर पड़ा। वहाँ से झाड़ू देते समय नौकर ने बेदानों के छिलका, बिस्कुट के टुकड़ों, अँगूर के पिटारे की रुई और इसी तरह के और कूड़े-करकट के साथ उस पत्र को भी बटोर कर बाहर फेंक दिया। इस तरह सुरेन्द्र के हृदय की आशा धूल में मिलकर, हवा में उड़कर, ओस में भीगकर, और धूप में सूखकर अन्त में एक बबूल के वृक्ष के नीचे आकर पड़ रही।

पहले तो सुरेन्द्र को आशा थी कि पत्र के उत्तर में निसन्देह बड़ी

दीदी के दर्शन होंगे। इसके बाद बड़ी दीदी के हाथ के लिखे एक कागज के टुकड़े के लिए ही तरसता रहा। किन्तु कई दिन बीत गये, कुछ भी उत्तर न आया, कोई भी आशा और आकांक्षा पूर्ण नहीं हुई। धीरे-धीरे ज्वर उतर गया। स्वस्थ हो वह उठ खड़ा हुआ। इसके बाद सुरेन्द्र के जीवन में एक नई घटना घटी। घटना यद्यपि नई थी किन्तु थी बिलकुल ही प्राकृतिक। सुरेन्द्र के पिता को इसकी सूचना बहुत दिनों से थी, और वे इसके होने की आशा किये बैठे थे। सुरेन्द्र के नाना पवना जिले के एक अच्छे दर्जे के जमींदार थे। उनकी जमींदारी २०-२५ गाँवों की थी। सालाना आमदनी ४०-५० हजार रुपये के लगभग की थी। एक तो उनके कोई आल औलाद न थी, इसलिए खर्च का कम होना स्वाभाविक ही था। उस पर बात यह थी कि वे प्रसिद्ध कंजूस भी थे। इसी कारण अपनी लम्बी जिन्दगी में उन्होंने काफी खासी रकम जमा कर ली थी। उनकी मृत्यु पर उनका सारा धन और जायदाद उनके नाती सुरेन्द्रनाथ ही को मिलनेवाली थी, वही उनका उत्तराधिकारी था। सुरेन्द्र के पिता को यह पक्का विश्वास था। हुआ भी वही। सुरेन्द्र के पिता राय महाशय को खबर मिली कि उनके ससुर जी मृत्यु के समीप हैं। इसलिए उन्होंने तुरन्त ही पुत्र-सहित पवने की यात्रा कर दी। किन्तु उनके पहुँचने में देर हो गई, पहले ही ससुर जी का प्राणान्त हो चुका था।

धूमधाम के साथ ससुर की तेरहीं हो गई। जमींदारी का प्रबन्ध पहले ही से चौकस था, दामाद ने अपने हाथ में आते ही और भी ठीक ठिकाने से देखना-भालना और जाँचना-समझना शुरू कर दिया। कठोर अक्लवाले, अनुभवी, और प्रौढ़ वकील रायबाबू की कड़ी निगरानी से परेशान होकर इलाके की सारी प्रजा त्रस्त हो उठी!

अब सुरेन्द्र का विवाहित हो जाना आवश्यक जान पड़ा। लड़की-लड़कों का पता लगानेवाले दलाल घटक कहलाते हैं। युक्तप्रदेश, मध्यप्रदेश

आदि में यही काम नाई या पुरोहित आदि किया करते हैं। खबर पाकर राय महाशय के घर पर आने-जाने लगे। गाँव भर में धूमधाम मच गई। चालीस पचास कोस तक की सीमा में जहाँ कहीं कोई सुन्दर लड़की थी वहाँ उस लड़की के लिए सुन्दर, सुशील, सुशिक्षित वर सुरेन्द्रनाथ के सम्बन्ध की सम्भावना के सौभाग्य की सूचना के साथ पहुँच कर घटकों के दल माँ-बापों घरों को जल्दी-जल्दी अपनी चरण धूलिका से पवित्र करने लगे। इसी तरह दो चार महीने, बीत गये।

अन्त में एक दिन सुरेन्द्र की विमाता वहाँ आईं। उनके सभी सगे सम्बन्धी जितने जहाँ थे, धीरे धीरे आकर एकत्रित होने लगे। बन्धु-बान्धवों और नाते-रिश्तेदारों से सारा घर भर गया।

इसके पश्चात् एक दिन सबेरे के समय रोशनचौकी और ढोल-ताशे वगैरह बाजों की आवाज और बारातियों तथा तमाशाइयों के शोर-गुल और चहल पहल से सारा गाँव गूँज उठा था। सुरेन्द्रनाथ शादी करके घर लौट आया।

—: ० :—

सातवाँ परिच्छेद

लगभग पाँच वर्ष बीत गये। अब न सुरेन्द्र के पिता रायबाबू ही इस लोक में उपस्थित हैं; और न माधवी के पिता ब्रजराज लाहिड़ी ही जीवित हैं। सुरेन्द्र की विमाता स्वर्गीय स्वामी की सारी सम्पत्ति ले जाकर अपने मौके में रहती हैं।

आजकल सुरेद्रनाथ की जैसे बड़ाई होती है वैसे ही निन्दा भी होती है। एक दल के लोग कहते है कि ऐसा बन्धु-प्रेमी दयालु सरल और निष्कपट, मित्रों की इज्जत करनेवाला जमींदार संसार में दूसरा नहीं दिखायी देता, इसके खिलाफ दूसरे दल के लोग कहते हैं कि ऐसा सताने वाला, कठोर जमींदार इस देश में दूसरा पैदा ही नहीं हुआ।

ये दोनो कथन सत्य हैं। पहली बात तो स्वयं सुरेन्द्रनाथ के कारण सच है, और दूसरी बात उनके मैनेजर मथुरानाथ के कारण ठीक है।

सुरेन्द्र की बैठक में आजकल मित्रों का जमघट रहता है। वे लोग बड़े सुख सुविधा के साथ संसार के सभी शौक पूरे किये लेते हैं। पान-तमाखू, मांस-मदिरा और अन्य सब इसके साथ की वस्तुएं भी सदा सभी के लिए सहज-सुलभ रहती है। मित्रों को किसी चीज के लिए चिन्ता नहीं करनी पड़ती। कुछ मुँह से माँगना नहीं पड़ता—आप ही आप सब कुछ उपस्थित हो जाता है।

मैनेजर मथुरा बाबू इसमें खूब उत्साह दिखाते हैं। खर्च करने में वे कभी देर नहीं करते। दावतो और जल्सों के खर्च के लिए वे दिल खोल कर खर्च करते हैं। उनका ऐसा रोआब है कि प्रजा स्वयं खुशी से इस मद का सारा खर्च चलाती है। मथुरा बाबू के हिसाब की एक पाई भी किसी के ऊपर बाकी नहीं रह सकती। प्रजा के घर में आग लगवाने में, लोगों

क बस-बसाये घर उजाड़ने में, जमींदार के दफ़्तर में एक छोटी-सी "काल-कोठरी" में कर्जदार कृषकों को कैद करने और मारते-मारते अध-मरा कर डालने में जो साहस और उत्साह का परिचय देते हैं, उनकी मिसाल मिलना कठिन है ।

प्रजा का करुण-क्रन्दन कभी-कभी शान्तिदेवी (सुरेन्द्रनाथ की पत्नी) के कानों तक पहुँच जाता है । वे स्वामी से उलाहने के तौर पर कहती हैं —यदि तुम अपनी जमींदारी की देख-भाल स्वयं न करोगे तो सब सत्या-नाश हो जायगा ।

सुनकर सुरेन्द्र चौंक उठता है । कहता है—यही तो, ऐसी बात है ? क्या तुम सच कहती हो ?

क्या सच नहीं है ! गाँव भर में, सारे इलाके में, बड़ाई हो रही है ! कान नहीं दिये जाते ! केवल तुम्हारे ही कानों तक ये सब बातें नहीं पहुँच पातीं । चौबीसों घन्टे मित्रों को लिये बैठे रहने से कहीं कोई ऐसी बातें सुन पाता है ? ऐसे प्रबन्धक का कोई काम नहीं; उसे अभी जवाब दे दीजिये ।"

सुरेन्द्र दुःखित होकर कहता है—"ठीक है, मैं कल से स्वयं ही सब कुछ काम देखूँगा" इसके बाद कुछ दिन तक जमींदारी का काम-काज देखने की धूम मच जाती है । मैनेजर साहब घबरा उठते हैं, कभी-कभी गम्भीर मुद्रा में कहते हैं—बाबू जी, इस तरह प्रबन्ध में नरमी करने से भला जमींदारी कैसे सम्हली रहेगी ? क्या आप यह समझते हैं कि सख्ती से काम लिये बिना आप अपनी जमींदारी कायम रख सकेंगे ? कभी नहीं असम्भव है ।

सुरेन्द्र हँसकर कहता है—दीन दरिद्र, दुखियों का खून चूस कर जो जमींदारी कायम है उस जमींदारी को बनाये रख कर होगा क्या ? ऐसी हत्यारिणी जमींदारी किस काम की मथुरा बाबू ? "तो फिर मुझे अवकाश दीजिये, मैं चला जाऊँ —"

यह सुनते ही सुरेन्द्र नरम पड़ जाता है। इसके पश्चात् फिर सब जैसे का तैसा हो जाता है। वही पहले की भाँति सब काम होने लगता है। सुरेन्द्र अपने बैठकखाने में उसी तरह यारों की तैयारी में लग जाता है। फिर वह बैठक के बाहर नहीं होता।

अभी हाल में एक और नई बला आकर उसके सिर पड़ गई है। अभी जो नया बाग मय बारहदरी के बनकर तैयार हुआ है! उसमें एक एलोकेशी नामक औरत ने कलकत्ते से आकर आसन जमाया है। उसके नाचने-गाने में कमाल है। देखने में भी अच्छी है। छत्ता टूटने पर मधुमक्खियों के गिरोह जैसे दल के दल एक जगह से दूसरी जगह के लिए चल पड़ते हैं वैसे ही मित्रों का दल अब बैठकखाने की बैठक छोड़ कर उसी ओर दौड़कर जाने लगा है। मित्रों को इतना आनन्द है कि वे उसे रोक नहीं पाते। सुरेन्द्र को भी वे सब उधर ? ले जाते हैं। आज तीन दिन व्यतीत हुए, शान्ति को पति के दर्शन नहीं मिले। चौथे दिन पति को आते देखकर वह पीठ के बल दरवाजे के सहारे खड़ी होकर पूछने लगी—"इतने दिन आप कहाँ रहे?" बाग की बारहदरी में।" "वहाँ ऐसा कौन आकर्षण है, जो तुम तीन दिन तक पड़े रहे?" "हाँ—सो तो"

"हर बात में बस इसी प्रकार कह देते हो! मैं सब कुछ सुन चुकी हूँ।"—कहते-कहते शान्ति फूट कर रो पड़ी। बोला—"मुझसे से क्या ऐसा अपराध बन पड़ा है, जो इस तरह पैरों से ढकेल रहे हो।" "कहाँ, ऐसा तो मैंने—"

"और किसे पैरों से ढकेलना कहते हैं? स्त्रियों का अपमान इससे बढ़कर और क्या हो सकता है?" हाँ हाँ—तो ठीक ही है—मगर वही सब लोग—"

शान्ति ने यह कुछ सुना ही नहीं। वह और भी अधिक जोर से रोने लगी, बोली—तुम स्वामी हो मेरे भगवान हो! मेरा यह लोक और

परलोक, सब कुछ तुम्हीं हो ! मैं क्या तुमको पहचानती नहीं । मैं जानती हूँ, मैं तुम्हारी कुछ नहीं हूँ, मैंने एक दिन के लिए भी तुम्हारा मन नहीं अपनाया । यह अपनी पीड़ा तुम से किस तरह कहकर समझाऊँ ! तुम लज्जित न होओ, तुम्हें दुख न हो, यह सोचकर कोई अपने हृदय की बात—अन्तस्थल की गूढ़ पीड़ा—तुम्हारे आगे कभी नहीं खोलकर कहती ।

"तुम रोती क्यों हो शान्ति ?"

"रोती क्यों हूँ, क्या उत्तर दूँ क्यों रोता हूँ, इसे अन्तर्यामी ईश्वर जानते हैं । मैं यह भी समझती हूँ, यह कुछ मुझ से छिपा नहीं है कि तुम मेरा अनादर नहीं करते । तुम्हारे मन में भी दुख है, तुन क्या करो ? (आँसू पोंछ कर) मैं भले ही जिन्दगी भर ऐसी ही बुरी यातना पाऊँ, कोई हर्ज नहीं । लेकिन तुमको क्या कष्ट है, यह काश मुझे मालूम हो सके—"

सुरेन्द्र ने उसे अपने पास खींचकर, अपने हाथों से उसके बहते आँसू पोंछकर, स्नेह-मिश्रित स्वर में कहा—तो फिर तुम क्या करो शान्ति ?

आपको इस प्रश्न का भला क्या उत्तर दिया जा सकता है ? इसका तो कुछ उत्तर ही नहीं सूझ पड़ता । शान्ति फिर फूट-फूटकर रोने लगी ।

बहुत देर के बाद शान्ति ने कहा—तुम्हारा शरीर भी तो आजकल अच्छा नहीं दीख पड़ता ।

"आज क्यों, गत पाँच वर्ष से अच्छा नहीं है । जिस दिन कलकत्ते में किले के मैदान में गाड़ी के नीचे मैं कुचल गया था, छाती में, पीठ और हड्डियों में गहरी चोट आई थी महीने भर अस्पताल में पड़ा रहा था, उसी दिन से मेरा शरीर स्वस्थ नहीं है । उस दिन की चोट, वह वेदना किसी तरह नहीं दूर हुई । कभी कभी खुद मुझे यह सोचकर ताज्जुब होने लगता है कि मैं,अब तक जीवित कैसे हूँ !"

शान्ति ने तुरन्त पति की छाती में हाथ लगाकर कहा—चलो, गाँव

छोड़कर अब हम लोग कलकत्ते चलें। वहाँ अच्छे और बड़े-बड़े तजुर-बेकार डाक्टर रहते हैं—

सुरेन्द्र प्रसन्न होकर कह उठो—ठीक है, चलो। वहाँ बड़ी दीदी भी हैं।

शान्ति ने कहा—बड़ी दीदी को देखने की तो मेरी भी बड़ी प्रबल इच्छा है। उन्हें अपने घर पर ले आओगे न?

"लाऊँगा क्यों नहीं?" —यह कह कर, उसके बाद जरा सोच कर सुरेन्द्र ने कहा—वे जरूर आवेंगी; मैं मर रहा हूँ, यह सुन भर पावें—

शान्ति ने बीच ही में हथेली से पति का मुँह बन्द कर दिया। बोली—"तुम्हारे पैरों पर पड़ती हूँ, फिर ऐसी बात मुँह से कभी न निकालना।" आह! वे अगर आ जायँ तो फिर मुझे कोई क्लेश ही न रह-जाय।"

एक प्रकार के मान-अभिमान से शान्ति का हृदय डूब गया। अभी अभी थोड़ी देर पहले उसने कहा था कि वह स्वामी की कोई नहीं है। किन्तु सुरेन्द्र ने इतना नहीं समझा, इस ओर इतना ध्यान नहीं दिया, इस पहलू को उतना ध्यान करके नहीं देखा। वह तो कुछ कह रहा था, उसी में उसे बड़ा आनन्द होता था। वह उसी सिलसिले में कहता गया—"तुम स्वयं जाकर बड़ी दीदी को बुला लाना शान्ति। क्यों जाओगी न?" शान्ति ने सिर हिला कर स्वीकारात्मक उत्तर दिया।

"उनके आते ही तुम स्वयं देख लेना; मुझे कोई कष्ट नहीं रहेगा शान्ति की दोनों आखो से आँसू बह चले।

दूसरे दिन शान्ति ने दासी के द्वारा मैनेजर बाबू के पास कहला भेजा कि बाग में जिसको लाकर टिकाया गया है उसे अभी, इसी समय, अगर भगा न दिया गया तो उनको मैनेजरी से हाथ धोना पड़ेगा। इधर पति से उसने कहा खैर, और चाहे जो हो, लेकिन अगर तुमने घर के बाहर पैर भी निकाला तो मैं सिर पटक-पटक कर अपनी जान दे दूँगी।

सिटपिटाया हुआ सुरेन्द्र कहने लगा—वही तो—हाँ सो, मगर ये लोग सब—

"अच्छा, तो 'मगर' का भी प्रबन्ध किये देती हूँ।" कह कर शान्ति ने दासी को बुलाकर फिर आज्ञा दिया— जाकर दरवाजे पर सिहाही से कह दे कि वे सब बदमास लुच्चे अब मेरी चौखट न डाँकने पावें।

मैनेजर बाबू ने देख लिया कि अब मामला कठिन है। इससे फौरन एलोकेशी को बिदा कर दिया। मित्रों की पार्टी भी तितर-बितर हो गई। इसके बाद मैनेजर बाबू नये सिरे से चित्त लगाकर जमींदार का काम देखने लगे।

सुरेन्द्रनाथ का अभी कलकत्ते जाना फिलहाल रुक गया। कलेजे का दर्द भी इधर कुछ घटने लगा था। कलकत्ते जाने के लिए शान्ति भी अब वैसा अधिक उत्साह नहीं प्रकट करती। वह यहीं रह कर यथासम्भव पति की सेवा का प्रबन्ध करने लगी। एक नामी तजुर्बेकार डाक्टर को कलकत्ते से बुलवा कर उसने स्वामी को दिखलाया। विज्ञ चिकित्सक ने सब देख सुनकर एक दवा तजवीज की। साथ ही विशेष रूप से सावधान रहने का उपदेश भी दिया कि रोगी के कलेजे की हालत बड़ी नाजुक है, ऐसी हालत में शरीर का या मन का कोई भी काम करना ठीक नहीं।

इधर अवसर देखकर मैनेजर ने जिस ढँग से जमींदारी का काम देखना-भालना शुरू कर दिया था उसका फल यह हुआ कि इलाके भर में हर ओर भीषण हाहाकार मच गया। बीच-बीच में प्रजा का आर्तनाद शान्ति को सुन पड़ता था। लेकिन डाक्टर की आज्ञा का ख्याल करके वह पति से कुछ कहने का साहस न कर सकी।

—: ० :—

आठवाँ परिच्छेद

ब्रज बाबू के परिवार में, अब ब्रज बाबू के स्थान पर पुत्र शिवचन्द्र मालिक है। घर के भीतर का शासन माधवी के हाथ से निकलकर नई बहू के हाथ में चला गया है। भाई (शिवचन्द्र) आज भी उसी तरह खूब स्नेह-आदर का व्यवहार करता है; किन्तु फिर भी, जाने क्यों, अब माधवी का मन यहाँ बिल्कुल नहीं लगता—यहाँ रहने को जी ही नहीं चाहता। घर के दास-दासी, मुनीम वगैरह सब इस समय भी उसे बड़ी दीदी ही कहते हैं, लेकिन ये सभी समझते हैं कि सन्दूक की कुँजी अब दूसरे ही के आँचल में बँधी रहती है। किन्तु इसका यह अर्थ न निकालना चाहिए कि शिवचन्द्र की पत्नी माधवी से अवज्ञा अथवा अनादर का व्यवहार करती है। हाँ, वह इस तरह का एक भाव अवश्य प्रदर्शित करती है, जिससे माधवी अच्छी तरह समझती रहती है कि अब इस नई आई हुई बहू की आज्ञा और सलाह लिये बिना, पहले की तरह, अपनी इच्छा के अनुसार कोई कार्य कर डालना मुझे शोभा नहीं देता।

तब पिता का जमाना था, अब भाई की आज्ञा है। तब और अब में थोड़ा अन्तर होना ही चाहिए। पहले उसका विशेष आदर था, उसकी हठ का जमाना था, लेकिन अब आदर होने पर भी जिद नहीं चलने पायेगी। पिता के प्यार-दुलार से वह उन दिनों स्याह-सफेद करने की पूर्ण मालकिन थी, किन्तु अब जैसे और सब आत्मीय कुटुम्बी जन हैं वैसे ही उन्हीं के दल में उसकी भी गिनती है।

यहाँ पर अगर कोई लेखक के बारे में यह कहने लगे कि वह शिवचन्द्र या उनकी पत्नी को दोष लगाता है, सीधे-सीधे न कहकर घुमा-

फिराकर उसकी निन्दा कर रहा है, तो वह लेखक के विषय में भूल करेगा। संसार का जो नियम है, जो नीति-रीति आरम्भ से लेकर अभी तक चली आ रही है, उसी का उल्लेखमात्र यहाँ लेखक कर रहा है। माधवी के कर्म फूट गये हैं; 'अपना' कहकर जिस पर अधिकार कर सके, ऐसा कोई स्थान उसके लिए नहीं है। मगर इससे दूसरों को क्या? वे अपनी चीज पर दावा करना क्यों छोड़ दें? वे अपना छोटे-से-छोटा, साधारण-से-साधारण अधिकार भी क्यों छोड़ें। पति की चीज पर स्त्री का अधिकार होता है, यह कौन व्यक्ति नहीं जानता? क्या केवल शिवचंद्र की पत्नी ही यह बात नहीं जानती? शिवचंद्र तो स्वयं माधवी का भाई है, लेकिन उसकी स्त्री माधवी की कौन है? वह पराये के लिए अपना अधिकार क्यों छोड़ दे? माधवी यह सब समझ सकती और समझती भी खूब है। भावज जब बिलकुल छोटी थी और व्रज बाबू जीवित थे, तब माधवी की दृष्टि में छोटी बहन प्रमीला और भावज, दोनों एक थीं; लेकिन अब बात-बात में भावज की राय नहीं मिलती—माधवी दिन कहती है तो वह रात कहती है। माधवी बचपन से हठी है। जरा-सी बात भी उसे लग जाती है। इसी से वह अब अपने को सबसे नीचे की श्रेणी में रखना चाहती है। किसी की बात सहन करने का शक्ति उसमें नहीं, इसीलिए वह कुछ बोलती ही नहीं। जहाँ उसका कुछ जोर नहीं है, वहाँ सिर ऊँचा करके खड़े होने में लाज के मारे जैसे उसका सिर झुक जाता है। मन को कुछ पीड़ा पहुँचने पर वह चुपचाप उसे सहन कर लेती है—शिवचंद्र तक से वह कुछ नहीं कहती-सुनती। स्नेह का प्रमाण देने का उसे तनिक भी अभ्यास हा नहीं। इसी कारण आत्मीयता अथवा अपनेपन के सहारे अपना अधिकार जताना उसे नहीं भाता। ऐसे अधिकार का विचार भी मन में आने से उसके सारे शरीर और मन से धिक्कार की ध्वनि उठने लगती है। साधारण स्त्रियों की तरह लड़ने-झगड़ने के ऊपर उसे कितनी घोर घृणा है, यह केवल वही स्वयं जानती है।

एक दिन माधवी ने भाई को पास बुलाकर कहा—"दादा, मैं ससुराल जाऊँगी ।" शिवचंद्र ने विस्मय के साथ कहा—"ऐसा क्यों बहन ? वहाँ तो तुम्हारा अपना कोई है भी नहीं ।" माधवी ने परलोकी पूज्य पति की ओर संकेत करते हुए कहा—छोटा भानजा काशी जी में ननद जी के पास रहता है । उसे साथ लेकर मैं गोलगाँव में अच्छी प्रकार रह सकूँगी ।

पबना-जिले के गोलागाँव में माधवी की ससुराल थी । शिवचन्द्र ने सूखी हँसी हँसकर कहा –"यह कभी नहीं हो सकता । वहाँ तुम्हें बड़ा कष्ट होगा ।" "कष्ट क्यों होने लगा ? वहाँ का घर तो अभी वैसा ही बना खड़ा है । दस-पाँच बीघे जमीन भी अपनी है । एक विधवा का गुजर-बसर क्या इतने में नहीं हो सकेगा ?" गुजर हो सकने की बात मैं नहीं कहता । रुपये पैसे के लिए तो कुछ चिन्ता ही नहीं । मैं यह कहता हूँ कि वहाँ पर वीरान में अकेले रहने में बड़ा कष्ट होगा ।" "कुछ भी कष्ट न होगा ।" शिवचन्द्र ने दम भर सोचकर कहा—"मगर तुम यहाँ से जाना क्यों चाहती हो ? मुझे सब खोल करके बतलाओ । मैं सब झगड़े अभी निपटाये देता हूँ ।" इसके पहले, जान पड़ता है, शिवचन्द्र ने अपनी पत्नी के मुँह से बहन के विरुद्ध कुछ सुना होगा; और उसी का ख्याल हो आने से उसने यह बात भी कही होगी । लज्जा के मारे माधवी का चेहरा लाल हो गया। उसने कहा—"दादा, तुम क्या यह समझते हो कि मैं लड़-झगड़कर तुम्हारे घर से कहीं चली जाऊँगी ?" शिवचन्द्र खुद भी लज्जित हुआ । चटपट बात टालने के लिए कहने लगा—"नहीं, नहीं, यह मैं नहीं कहता । मेरा ऐसा खयाल कभी नहीं हो सकता मेरी बहन ! मेरे कहने का मतलब इतना ही है कि यह घर तो सदैव ही तुम्हारा है । फिर क्यों तुम यहाँ से जाना चाहती हो ?" एक साथ दोनों ही को अपने स्नेहमय पिता का खयाल हो आया । दोनों के आँखों में आँसू भर आये । आँचल से आँसू पोंछकर माधवी ने

कहा—मैं क्या सदा के लिए जाती हूँ। फिर आऊँगी। तुम्हारे लड़के का जनेऊ जब होगा तब मुझे वहाँ से ले आना। इस समय मुझे जाने दो भैया।

"यह अवसर तो कहीं आठ-दस वर्ष में आवेगा।"

"अगर जीवित रहूँगी तो अवश्य आऊँगी।"

माधवी किसी तरह भी पिता के घर में रहने को तैयार नहीं हुई और अपने जाने की तैयारी करने लगी। उसने नई आई हुई बहू को सारी घर-गृहस्थी सौंप दी—सब कुछ समझा-बुझा दिया। दास-दासियों को पास बुलाकर उन्हें आशीर्वाद भी दिया। जिस दिन जाने का शुभ मुहूर्त था उस दिन आँखों में आँसू भरे हुए शिवचन्द्र अपनी बहन के आगे खड़े होकर कहने लगे—माधवी, तेरे दादा ने तो तुझे कभी कुछ कहा-सुना नहीं?

माधवी ने मुस्करा कर कहा—ये कैसी बातें कर रहे हो दादा?

"मैं यह नहीं कहता हूँ, अगर किसी बुरी घड़ी में किसी दिन मेरे मुँह से असावधानी में कुछ—"

"नहीं दादा, तुमने मुझे कभी कुछ नहीं कहा।"

"सच?"

"हाँ सच।"

"अच्छा तो जाओ। तुम्हें अपने घर जाने के लिए अब मैं मना नहीं कर सकता। जहाँ तुम्हें अच्छा लगे वहीं रहो बहन। मगर हाँ, हमेशा अपनी खैर-खबर देना कभी न भूलना।"

माधवी सर्वप्रथम काशी गई। वहाँ जाकर अपने भानजे को साथ लिया। वहाँ से उसका हाथ पकड़े गोलागाँव में आई। आज सात वर्ष के पश्चात् उसने फिर दुबारा अपनी ससुराल की डेहली पर पैर रक्खा।

अब तो गोलागाँव के चटर्जी महाराज पर जैसे बड़ी भारी विपत्ति का पहाड़ ही टूट पड़ा। उनसे और योगेन्द्र (माधवी का पति) के

पिता से बड़ी गहरी दोस्ती थी। इसीलिए मरते समय योगेन्द्र अपनी कई बीघे जमीन उन्हीं को सौंप गये थे। योगेन्द्र की जिन्दगी में भी वही उस जमीन का प्रबन्ध और देख-भाल किया करते थे। योगेन्द्र उसकी ओर से बिलकुल निश्चिन्त रहता था। उसके ससुर (माधवी के पिता) के पास काफी धन था। इसलिए योगेन्द्र को अपने पिता की दी हुई इस मामूली जायदाद की कुछ अधिक परवाह नहीं थी। इसके बाद योगेन्द्र के मर जाने पर, चटर्जी महाराज पूर्ण रूप से अधिकार पाकर निष्कण्टक होकर बिना विघ्न-बाधा के उस सारी जमीन की आमदनी अपने काम में लाने लगे। लेकिन अब इतने दिनों के बाद योगेन्द्र की विधवा माधवी ने आकर नियम और कायदे के साथ बँधी हुई उनकी सुख की गृहस्थी में— मुफ्त मिल गई जीविका में—गड़बड़ मचाने की खबर दी। कहने की आवश्यकता नहीं, सुचतुर चटर्जी महाराज को यह माधवी का अत्यन्त कुविचार और अत्याचार जान पड़ा। उन्हें स्पष्ट समझ पड़ा कि माधवी ने जलन के मारे जान-बूझकर यह बवाल मचाया है। उन्होंने बहुत ही खीझकर माधवी के पास आकर कहा— "सुनती हो बहू, तुम्हारी जो दो बीघे वह जमीन पड़ी है उस पर दस साल के लगान की रकम चढ़ गई है। मय सूद-ब्याज के कुल सौ रुपये हो गये हैं। अगर ये रुपये न दिये जायँगे तो जमीन नीलाम हो जायगी। समझी ?" माधवी ने अपने भानजे सन्तोषकुमार से कहलाया—'रुपयों के लिए उसे कुछ चिन्ता नहीं है।' इसके बाद उसने लड़के के हाथ सौ रुपये उसी दम चटर्जी के पास भेजवा दिये। पाठकों को बतला देने में कोई हर्ज नहीं, कि ये रुपये चटर्जी ने अपने ही काम में खर्च किये।

किन्तु माधवी इस तरह सहज में छोड़नेवाली स्त्री नहीं थी। उसने सन्तोष को भेज कर पूछा—केवल इस दो बीघे जमीन से ही तो मेरे स्वर्गवासी ससुर जी का निबाह नहीं होता था? बाकी जो सब जगह-जमीन है, वह कहाँ और किसके मताहत है ?

सुनते ही चटर्जी आगबबूला हो उठे। वे स्वयं आकर बोले—वह तो सारी जमीन बिक गई। कुछ थोड़ी-सी साझे में जोती-बोई जाती थी है। आठ-दस साल से जमीदार को पोत-लगान न दिया जायगा तो जमीन कैसे बची रहेगी ?

माधवी ने पूछा—क्या जमीन से कुछ भी आमदनी नहीं होती थी, जो पोत के रुपये भी नहीं दिये जा सके और अगर सचमुच जमीन बिक ही गई तो उसे किसने बेचा और किसने खरीदा यह मालूम हो, तो उसको फिर फेर लेने के लिए कोशिश भी की जाय। जमीन खरीद फरोख्त के सम्बन्ध के सारे कागजात कहाँ हैं ?

चटर्जी महाशय ने इन प्रश्नों के उत्तर में कुछ कहा जरूर था, किन्तु माधवी कुछ भी नहीं समझ सकी। चटर्जी बुदबुदाते हुए अस्पष्ट गोल-मोल भाषा में न जाने क्या-क्या बक गये। इसके पश्चात वह सिर पर छाता तान कर रामनामी चदरा कमर मे लपेटे हुये, एक कोरी धोती अँगोछे में बाँधकर लालता गाँव की ओर, जमीदार के दफ्तर जाने के लिए उसी दिन चल पड़े। इसी लालता गाँव मे हमारे सुरेन्द्र का घर और उनके मैनेजर मथुरा बाबू का दफ्तर भी है। चटर्जी आठ-दस कोस राह पैदल चलकर एकदम मथुरा बाबू की शरण मे जाकर हाजिर हुए और रोकर कहने लगे—दोहाई मैनेजर साहब मालूम पड़ता है, अब मुझ गरीब ब्राह्मण को दर-दर भीख माँगकर पेट और परिवार पालना होगा ?

इस तरह के बहुत लाग आया ही करते हैं। मथुरा बाबू ने ब्राह्मण की ओर मुँह घुमाकर कहा—"हुआ क्या ? कुछ हाल भी तो कहो !"

"भैया, ब्राह्मण की रक्षा करो।" "अरे कुछ कहोगे भी क्या हुआ ?"

तब चटर्जी ने वही माधवी के दिये हुए सौ रुपये कमर से निकाल कर मैनेजर साहब के हाथ में रख दिये। इस तरह दक्षिणा देने के बाद बोले—आप दयालु ठहरे। आप रक्षा न करेगे तो मेरा सर्वस्व हाथ से निकल जायगा।

"मुझे सब मामला खुलासा करके समझाओ तो सही।"

"बात यह है कि गोलागाँव के रहनेवाले रामतनु सान्याल के पुत्र की विधवा स्त्री माधवी इतने दिनों के बाद लौट आई है और सारी जमीन पर अपना कब्जा जमाना चाहती है।"

मथुरा बाबू ने हँसकर कहा—वह तुम्हारी सारी जमीन व जायदाद पर अपना दखल जमाना चाहती है, या तुम उसके सर्वस्व पर हाथ साफ करना चाहते हो ? सही बात क्या है ?

तब ब्राह्मण ने अपने दोनो हाथो में जनेऊ लपेटकर कसम खाते हुये मैनेजर का हाथ पकड़ कर कहा—मैं आज दस बरस से उस जमीन का लगान देता आ रहा हूँ भैया !

"जब जमीन से फायदा उठाते हो, तो क्या लगान न दोगे।"

"दोहाई है आपकी—"

मैनेजर साहब सब कुछ समझ गये। बोले—विधवा को चक्कर देकर उसकी जमीन जब्त करना चाहते हो न ?

चटर्जी चुपचाप उनकी ओर देखते रहे।

"कुल के बीघे जमीन है ?"

"पचीस बीघे।"

मथुरा बाबू ने जबानी हिसाब लगाकर कहा—कम से कम तीन हजार रुपये तक की जायदाद है। अच्छा, जमींदार को कितनी रकम नजराने में दोगे ?

"आपका जो हुक्म होगा, वही दूँगा सरकार। तीन सौ रुपये तक दूँगा।"

"तीन सौ देकर तीन हजार हजम करना चाहते हो चटर्जी ! जाओ, यह काम मेरे द्वारा नहीं हो सकता।"

ब्राह्मण ने अपनी आँखों में आँसू भरकर कहा—आप कितने रुपयों के लिए आज्ञा देते हैं।

"एक हजार रुपये दे सकोगे ?"

इसके बाद दोनों बहुत देर तक एकान्त मे बातचीत और सलाह मशविरा करते रहे। नतीजा यह हुआ कि योगेन्द्रनाथ की विधवा माधवी के ऊपर जमींदार की ओर से बाकी दस वर्ष का लगान और उसका सूद ब्याज मिलाकर कुल डेढ़ हजार रुपये की नालिश हो गई। समन जारी हुआ, किन्तु माधवी के पास तक नहीं पहुँचा। इसके बाद एक-तरफा डिग्री भी हो गई, और डेढ़ महीने के बाद माधवी ने सुना कि बाकी लगान की वसूली के लिए जमींदार की ओर से उसकी जमीन और घर-बार तक नीलाम करने का इश्तिहार जारी किया गया है—उसकी सारी जायदाद कुर्क हो गई।

सुनकर माधवी ने एक पड़ोसिन को पास बुलाकर उससे कहा—बहन, तुम्हारा देश क्या बिलकुल अन्धेर-नगरी है ?

"ऐसा तो कभी नहीं है। क्यों, क्या हुआ जी ?"

"मुझे तो ऐसा ही जान पड़ता है। एक शैतान जालिया धोखा देकर जाल करके मेरा सब कुछ हड़प लेना चाहता है, और तुम लोग कुछ नहीं देखते। यह कैसा अन्धेर है भगवान।"

पड़ोसिन ने कहा—मगर मैं क्या कर ही सकती हूँ ? हम लोगों का क्या बस है ? जमींदार अगर तुम्हारी जमीन-जायदाद नीलाम करा ले तो कोई कर क्या सकता है ? हम गरीब-दुखिया लोग क्या कर सकते हैं ?

"खैर मैंने यह भी मान लिया। मैं यह पूछती हूँ, मेरा घर नीलाम हो गया, और मुझे उसकी खबर तक नहीं मिली यह क्या बात है ? तुम्हारा जमींदार भी कैसा है ?"

तब पड़ोसिन ने सारी बातें विस्तार के साथ कहना शुरू किया। ऐसा अत्याचारी, जमींदार और ऐसा अन्धेर, ऐसा अत्याचार-अविचार इस देश में कभी किसी ने देखा-सुना भी नहीं। उस पड़ोसिन ने और

भी न-जाने क्या-क्या बुराई की। आज तक लोगों के मुँह से जमींदार के बारे में जो कुछ उसने सुना था, जो कुछ वह स्वयं जानती थी, सो सब एक-एक करके उसने कह सुनाया। माधवी ने डरते-डरते पूछा—"अच्छा, अगर जमींदार से भेंट करके मैं स्वयं कहूँ-सुनूँ तो क्या कुछ उमीद है, इस बारे में तुम्हारी क्या राय है?" अपने लिए नहीं, केवल भानजे के लिए माधवी सब कुछ करने को तैयार बैठी थी। पड़ोसिन इस बारे में उसी समय कुछ सलाह न दे सकी। किन्तु जाते समय यह वादा कर गई कि कल वह अपनी बहन के लड़के से भली भाँति पूछ-ताछ करके आवेगी, और बतलावेगी। उसकी बहन का लड़का दो-तीन बार लालता-गाँव तक हो आया था। जमींदार के यहाँ की बहुत सी बातें वह जानता भी था। यहाँ तक कि उस दिन बाग में एलोकेशी के आने, रहने और भगाये जाने की खबर तक वह सुन आया था। उसकी मौसी ने जब उससे यह पूछा कि रामतनु की विधवा पतोहू जमींदार बाबू से भेंट करना चाहती है, इस बारे में तेरी क्या राय है, तो उसने मुँह बनाकर गम्भीर भाव करके पूछा—उस विधवा की अवस्था क्या होगी?

"बीस-इक्कीस वर्ष की होगी।"

उसने सिर हिलाते हुए पूछा—देखने सुनने में कैसी हैं?

"बिलकुल परी जैसी जान पड़ती है।"

इस पर उसने विचित्र ढंग से मुँह बिचका कर कहा—हाँ, तो भेंट करने से उसका काम सिद्ध हो जाने की बहुत कुछ आशा की जा सकती है। लेकिन सच पूछो तो मेरी राय यही है कि वे आज ही रात को चुप-चाप नाव पर बैठ अपने बाप के घर चली जायँ। इसी में उनकी कुशल है।

"ऐसा क्यों?"

"तुम कहती हो न कि वे देखने में परी-जैसी सुन्दर हैं।"

"तो फिर इससे क्या हुआ?"

"इसी से तो पूरा भय है। परी-जैसी रूपवती युवती जमींदार सुरेन्द्र की नजरों में पड़कर फिर अपने धर्म की रक्षा किसी तरह भी नहीं कर सकती। समझा तुम ?"

"क्या कहता है ? यह हाल है ?"

उसने हँसकर कहा—हाँ मौसी, यही हाल है वहाँ का। सभी लोग जानते हैं।"

"तब तो उसका जमींदार से मिलना ठीक नहीं।

"किसी तरह भी नहीं।"

"लेकिन यों ही बैठे रहने से बेचारी विधवा का सब कुछ जो चला जायगा ?"

"वह दुराचारी चटर्जी जब इस मामले में मौजूद है तब जमीन-आयदाद बचने की कोई आशा नहीं दीख पड़ती। गृहस्थ के घर की विधवा धन के साथ धर्म भी क्या गँवा देगी ?"

दूसरे दिन पड़ोसिन ने आकर माधवी से सारा हाल कह सुनाया। सुनकर माधवी सन्नाटा खींच गई। जमींदार सुरेन्द्र का नाम और उनके यहाँ सुने हुए काम उसे नहीं भूले। माधवी सोचने लगी—सुरेन्द्र राय यह सुरेन्द्र राय है कौन ? यह नाम तो बहुत ही परिचित जान पड़ता है, लेकिन स्वभाव और चरित्र तो उससे बिलकुल नहीं मिलता-जुलता। इस नाम को तो वह न जाने कितने दिनों से मन ही मन याद करती आ रही है। उसको आज पूरे पाँच वर्ष हो गये ! कुछ-कुछ भूल चली थी—लेकिन आज बहुत दिनों के बाद फिर याद आ गई।

उस दिन माधवी को ठीक नींद नहीं आई। स्वप्न भी बुरे-बुरे ही देख पड़े। वह रात बड़े कष्ट और पीड़ा के साथ उसने काटी। बार बार वे सब पुरानी बातें उसे याद हो आती थीं—बार-बार आँखों से आँसू बह निकलते थे। बालक सन्तोष कुमार ने उसकी ओर देख कर डरते-डरते कहा—"मामी ! मैं माँ के पास जाऊँगा।" माधवी स्वयं भी

कई बार यही सोच चुकी थी। क्योंकि यहाँ का अन्न-जल जब उठ गया तब फिर काशीवास के सिवा और कोई रास्ता ही नहीं। उसने सन्तोष कुमार ही के लिए जमींदार से भेंट करने का उपाय अपने मन में किया था; किन्तु अब यह नहीं होने का। पास-पड़ोस के लोग मना कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त अब वह चाहे जहाँ जाय, एक नई चिन्ता हो गई है, एक नई आफत आन पड़ी है। वह और कुछ नहीं, उसी के रूप और यौवन की प्रसिद्धि है। माधवी ने अपने मन में कहा कि मेरी किस्मत ही फूटी है। रूप आदि का झगड़ा क्या अब तक इस शरीर में बना ही हुआ है। आज सात साल बीते, इन बातों का उसे ध्यान ही न था। इधर ध्यान दिलाने वाला कोई था ही नहीं। पति के मृत्यु पर जब वह अपने पिता के घर लौट गई थी तब सभी ने उसे "बड़ी दीदी", "बिटिया", "माई" आदि कहना प्रारम्भ कर दिया था। इन सम्मान-सूचक सम्बोधनों ने उसके मन को और भी असमय में ही वृद्ध बना दिया था। रूप-यौवन कुछ वस्तु नहीं है। जहाँ उसे बड़ी दीदी का कार्य करना होता था, माता का स्नेह और सेवा का सदाव्रत बाँटना पड़ता था, वहाँ क्या कभी इस रूप और यौवन का ध्यान मन में आ सकता था? पहले खयाल न था, अब ध्यान हो आया, तो चिन्ता भी पैदा हो गई, भय भी पैदा हो गया। खास कर इस यौवन के उल्लेख से। लज्जा की बिलकुल हँसी हँसकर उसने आप ही आप कहा—"यहाँ के आदमी अन्धे हैं या जानवर?" किन्तु माधवी ने भूल की—सभी का मन उसकी भाँति २१-२२ वर्ष की उम्र में ही वृद्ध नहीं हो जाता।

इसके तीन दिन पश्चात् जब जमींदार का सिपाही माधवी के दरवाजे पर आसन लगाकर बैठ गया, और ऊँची आवाज में जोर-शोर से ग्रामवासियों को जमींदार सुरेन्द्र राय की ओर एक नई सूचना देने लगा, तब माधवी चटपट सन्तोष का हाथ पकड़कर दासी के पीछे-पीछे घर से निकल गई, और जाकर नाव पर सवार हो गई।

घर से समीप ही नदी का घाट था। माधवी ने मल्लाह से कहा—"सोमरापुर जाना है।" माधवी ने सोचा, जरा छोटी बहन प्रमीला को भी देखती चलूँ।"

गोलागांव से दस मील के फासले पर सोमरापुर में प्रमीला का ब्याह हुआ था। आज एक साल से वह ससुराल में ही है। प्रमीला शायद फिर कलकत्ते जाय, लेकिन उस समय वहाँ माधवी कहाँ रहेगी! इसी लिये उसने उसे एक बार देख लेना ठीक समझा।

प्रातः सूर्योदय के साथ ही माँझियों ने नाव खोल दी। धारा के वेग में नाव बह चली। हवा का बहाव उलटा था। इसी से नाव मन्द चाल से, बासों के जंगल के भीतर होकर, कँटीले झाड़-झंखाड़ बचाकर, सेंठों के झुरपुट को पीछे छोड़ती हुई धीरे-धीरे जा रही थी। बालक सन्तोष के आनन्द की सीमा न थी। वह नाव में छप्पर के भीतर बैठा हुआ, वहीं से हाथ बढ़ाकर, आस-पास के पेड़ों के पत्तों को उत्साह के साथ तोड़ने लगा। मल्लाहों ने कहा—हवा का वेग अगर कम न होगा तो कल दोपहर तक नाव सोमरापुर पहुँच सकेगी।

आज माधवी को निर्जला एकादशी का व्रत था। किन्तु सन्तोष के लिए तो अवश्य ही कहीं पर नाव रोककर रसोई बनाना और उसे खिलाना होगा। मलाह ने कहा—दिस्तेपाड़ा के गज में नाव लगाने का बहुत ठीक होगा। वहाँ सब कुछ मिलता है।

दासी ने कहा—यही करो भैया, दस-ग्यारह बजे के भीतर लड़के को भोजन मिल जाना जरूरी है।

-: o :-

नवाँ परिच्छेद

कार्तिक का महीना समाप्त हो चला। कुछ-कुछ जाड़ा पड़ने लगा है। सुरेन्द्रनाथ के ऊपर के कमरे में खिड़की की राह से प्रातःकाल के सूर्य की किरण प्रवेश करने से वह दृश्य बड़ा ही सुन्दर और सुहावना जान पड़ता है। खिड़की के समीप बहुत-से जिल्ददार और कागज लेकर मेज के सामने सुरेन्द्रनाथ बैठा, वसूल, बाकी, तथा जमा-खर्च, बन्दोबस्त, मामले-मुकद्दमे वगैरह की सब नत्थियाँ और फ़ाइलें वह एक-एक करके उलट-पलटकर देख रहा था। यह सब कुछ देखना-सुनना एक तरह से जरूरी भी हो गया था। साथ ही यह समय काटने का एक सिलसिला भी था। इसके लिए शान्ति के साथ उसे कुछ झगड़ा भी करना पड़ता था। वह उसे कुछ भी नहीं करने देना चाहती थी। बड़ी मुश्किल से, बड़ी बहस करने के पश्चात् सुरेन्द्र शान्ति को यह समझा सका था कि अक्षरों की ओर देखने से ही आदमी के हृदय की पीड़ा बढ़ नहीं जाया करती, अथवा उसी दम उसे सहारा देकर वहाँ से बाहर ले जाने की जरूरत नहीं होती। विवश होकर शान्ति ने यह बात मान ली, और वह इस काम में आवश्यकता के अनुसार पति की मदद भी करती है।

आजकल पति के ऊपर शान्ति का पूरा रोब है—पूरा अधिकार है। उसकी एक भी बात सुरेन्द्र नहीं टालता। वास्तव में सुरेन्द्र ने कभी बात टालकर शान्ति को पीड़ित नहीं किया। बीच में केवल कुछ अभागे बद-माश मित्र मिलकर शान्ति को बड़ा क्लेश पहुँचा रहे थे। आजकल पत्नी की कड़ी आज्ञा से सुरेन्द्र का बाहर की मरदानी बैठक तक जाना भी मुहाल हो गया है। शान्ति ने डाक्टर की सलाह और उपदेश का प्राण-पण से पालन करने की ठीक-ठीक तैयारी कर ली है।

इस समय शान्ति पति के समीप बैठी हुई लाल फीतों के कागज़ों के बण्डलों को बाँध-बाँध कर रख रही थी। सुरेन्द्र ने एक कागज देखते-देखते सिर उठाकर एकाएक पुकारा—शान्ति !

शान्ति अभी-अभी उठकर कहीं गई थी। दम भर पश्चात् लौट कर उसने पूछा—"क्या तुम मुझे पुकार रहे थे।"—"हाँ। मैं जरा दफ्तर में जाना चाहता हूँ।"

"नहीं। बताओ, क्या चाहिए, मैं यहीं मँगाये देती हूँ।" "मुझे कुछ चाहिए नहीं, मैं जरा मैनेजर से मिलूँगा।" तो मैं उन्हें यहीं बुलवा लूँगी—आखिर तुम क्यों जाते हो। लेकिन इस समय तुम्हें उनसे क्या काम है ?" "यही कहना है कि अब की पहली तारीख से उनको जवाब दे दिया जायगा; अब उनकी आवश्यकता नहीं।

सुनकर शान्ति को बड़ा आश्चर्य हुआ। लेकिन प्रसन्नता भी कुछ कम नहीं हुई। उसने सन्तुष्ट होकर पूछा—मैनेजर का अपराध क्या है।

"उन्होंने अपराध क्या किया है, यह तो अभी मैं ठीक-ठीक नहीं बता सकूँगा; लेकिन वे बड़ी 'बदमाशी' कर रहे हैं।" इसके बाद अदालत का सर्टिफिकेट और अन्य कई कागज, दिखाकर कहा—यह देखो, गोलागाँव में रहनेवाली एक विधवा स्त्री का घर-बार, जमीन-जायदाद सब कुछ उसने नीलाम में दूसरे नाम से खरीद लिया है ! मुझसे इस बारे में एक बार पूछा तक भी नहीं।

शान्ति ने दुःखित होकर कहा—आह, विधवा के ऊपर यह अत्याचार किया गया है ! यह काम तो ठीक नहीं हुआ। अच्छा, यह तो बताओ, उसने, उस विधवा की जायदाद आखिर नीलाम क्यों की ?

"उसके ऊपर दस वर्ष का लगान बाकी था। सूद और असल जोड़ कर पन्द्रह सौ रुपयों की नालिश की गई थी।"

रुपये बाकी होने की बात सुनकर शान्ति के मन में मथुरा नाथ के प्रति क्रोध और घृणा का भाव कुछ कम हो चला। उसने मन्द मुसकान

के साथ कहा—तो फिर इसमें मैनेजर का क्या अपराध है ? इतना वे छोड़ भी कैसे सकते थे ?

सुरेन्द्रनाथ चुप होकर मन में कुछ सोचने लगा। शान्ति ने इसी सिलसिले में फिर पूछा—तुम क्या इतने रुपये, सबके सब, छोड़ देना चाहते हो क्यों ? छोड़ दोगे ?

"छोड़ न दूँगा तो और करूँगा क्या ? एक बेचारी विधवा का घर-बार हथिया कर उसको क्या निकाल बाहर करूँगा ? तुम्हारी क्या यही अनुमति है ?"

उत्तेजना-पूर्ण हृदय से निकले हुए ये व्यंग-वाक्य शान्ति के हृदय में बिध गये। व्याकुल, दुःखित और लज्जित होकर उसने कहा—नहीं, कभी नहीं। मैं उस विधवा बहू को घर से निकाल बाहर करने की राय कभी नहीं दे सकती। इसके अलावा तुम अपने रुपये अगर किसी को दे भी डालो तो उसमें मैं क्यों बाधा करूँगी ?

सुरेन्द्र ने अब हँसकर कहा—"यह बात नहीं है शान्ति। मेरे रुपये क्या तुम्हारे रुपये नहीं हैं ? मेरा और तुम्हारा क्या अलग-अलग है ? अच्छा, जब मैं नहीं रहूँगा तब तुम—" (घबराकर) "यह क्या कहते हो—चुप भी तो रहो—" "और कुछ नहीं शान्ति, मैं यही पूछता हूँ कि तुम काम करोगी न, जिन्हे मैं पसन्द करता हूँ—बोलो भी ?"

शान्ति रोने लगी। क्योंकि उसे विश्वास था कि पति का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। उसने कहा—"तुम ऐसी बातें क्यों किया करते हो ? "मुझे भली लगती हैं, इसी से। अच्छा शान्ति, मेरा साध, क्या है, यह क्या तुम नहीं जान सकती ?"

शान्ति ने आँसू पोंछते हुए सिर हिलाकर सम्मति जताई।

थोड़ी देर पश्चात् सुरेन्द्र ने फिर कहा—"मेरी बड़ी दीदी का नाम—"शान्ति ने आँखों से अपना आँचल हटाकर सुरेन्द्र की ओर देखा।

सुरेन्द्र ने कागज दिखाकर कहा—"यह देखो बड़ी दीदी का नाम।" "कहाँ है?" "यह देखो लिखा है—माधवी देवी। उन्हीं का घर-बार नीलाम कर दिया गया है।"

क्षण भर में शान्ति ने सारा रहस्य समझ लिया। उसने कहा—इसी से शायद तुम उन्हें सब सम्पत्ति लौटा देना चाहते हो?

सुरेन्द्र ने मुस्करा कर उत्तर दिया—हाँ, यही बात है। उनका जो कुछ होगा वह सब अवश्य लौटा दूँगा—सब कुछ—तिल-तिल।

माधवी की चर्चा उपस्थित होने से शान्ति मन में कुछ पीड़ित हो उठी। शायद उसके मन में माधवी के प्रति कुछ जलन का बीज उग आया था।—

शान्ति ने कहा—"वह तुम्हारी बड़ी दीदी नहीं हैं। केवल माधवी नाम है। नाम ही से तो यह—" "तो क्या बड़ी दीदी के नाम का थोड़ा-सा सम्मान भी न करूँ?" "सम्मान करो, लेकिन वे तो उस सम्मान का समाचार कुछ भी न जान पावेंगी।" "वे न जान पावेंगी, सो ठीक है। मैं क्यों न सम्मान करूँ? मैं किस प्रकार असम्मान कर सकता हूँ?" "नाम की कहो, तो यही नाम न जाने कितनी स्त्रियों का हो सकता है।" "अच्छा, तुम क्या दुर्गा जी का नाम लिखकर उसके उपर पैर रख सकती हो?

"छिः छिः! यह क्या कहते हो? देवी-देवताओं के नाम के बारे में—"

सुरेन्द्र हँसने लगा। बोला—अच्छा, देवी-देवताओं के नाम जाने दो। मैं तुमको पाँच हजार रुपये दूँगा, अगर तुम मेरा एक काम कर दो।

शान्ति ने प्रसन्न होकर कहा—कौन-सा काम?

दीवार में सुरेन्द्र की एक तसवीर लगी हुई थी। उसे पत्नी को दिखाकर सुरेन्द्र ने कहा—इस तसवीर को तुम यदि—

"क्या कहा?

"इसे यदि चार ब्राह्मणों के द्वारा नदी के किनारे जला—"

सामने ही वज्रपात होने के कारण जैसे आदमी के शरीर का सारा खून पहले पल भर में देह से सिमिट कर सूख जाता है, मुँह साँप के रोगी का-सा नीले रंग का हो जाता है, वही दशा शान्ति की भी पहले हो गई। उसके उपरान्त धीरे-धीरे कुछ-कुछ होश-हवास ठीक होने पर करुणदृष्टि से पति के मुख की ओर देखकर वह चुपचाप नीचे उतर गई। शान्ति ने उसी दम पुरोहित को बुलाकर विधिपूर्वक शान्ति-स्वस्त्ययन का प्रबन्ध करके, तरह तरह की मानता मानकर, मन में प्रतिज्ञा कर ली कि बड़ी दीदी चाहे जो भी हों, इनके बारे में अब मैं कोई बात मुँह से नहीं निकालूँगी। फिर कमरे के भीतर से किवाड़े बन्द करके बहुत देर तक बैठे-बैठे आँसू बहाती रही। इस जीवन में आज तक ऐसी कड़वी, कठोर बात कभी उसने नहीं सुनी थी।

सुरेन्द्र भी इधर कुछ देर तक बैठा रहा—फिर उठकर बाहर चला गया। दफ्तर में मैनेजर से भेंट हुई। पहले ही सुरेन्द्र ने यह सवाल किया—"गोलागाँव मौजे में किसकी जायदाद नीलाम हुई है?" मृतक रामतनु सान्याल की विधवा पतोहू की।" क्यों?" "दस साल से मालगुजारी नहीं मिली थी।" "कहाँ है खाता? लाइए देखूँ तो।"

मथुरा बाबू पहले तो अविश्वास-सूचक आदेश को सुनकर अकचका गये। मगर उसी समय सँभल कर उत्तर दिया—खाते वगैरह और कागजात सब पबने में ही हैं। वहाँ से लाये नहीं गये वे।

"अच्छा तो अभी लाने के लिए आदमी भेज दो। क्या तुमने उस बेवारिस विधवा ब्राह्मणी के बैठने तक के लिए जरा-सी जगह नहीं छोड़ी?" "शायद नहीं है।" "तो वह कहाँ रहेगी बेचारी?"

साहस बटोर करके मैनेजर ने कहा—"रहने की जगह क्यों नहीं है, वह अब तक जहाँ थी वहीं जाकर अब भी रहेगी।" "अब तक कहाँ

रहती थी वह।" "कलकत्ते में, अपने पिता के घर।" "उसके पिता का क्या नाम है?" 'ब्रजलाल लाहिड़ी।" "और, उस विधवा का नाम?" "माधवी देवी।"

सिर झुकाकर सुरेन्द्रनाथ उसी जगह बैठ गये। मालिक की दशा देख कर तो मैनेजर घबरा उठा। उसने पूछा—"क्या हुआ? बात क्या है? कैसी तबीयत है?" सुरेन्द्र ने इन सवालों का कुछ उत्तर न देकर एक नौकर को पुकारा। उसके आने पर आर्डर दिया—जल्दी साईस से एक अच्छे घोड़े की जीन कसकर सवारी के लिए तैयार करने को कह आओ—यहाँ से गोलागाँव कितनी दूर होगा? मैं इसी वक्त वहाँ जाना चाहता हूँ।

"कोई दस कोस के फासले पर होगा मालिक।" (घड़ी देखकर) "अभी नव बजे हैं, एक बजे तक तो शायद वहाँ पहुँच जऊँगा।"

घोड़ा आ गया। सुरेन्द्र ने उस पर बैठकर पूछा—"किधर जाना होगा?" "पहले उत्तर की ओर फिर पश्चिम की ओर सीधी राह है।"

सुरेन्द्र ने घोड़े को चाबुक मारी। वह चौकड़ी भरता हुआ दौड़ पड़ा।

इधर यह सब समाचार सुनते ही शान्ति बेहाल हो उठी। ठाकुर द्वारे में जाकर ठाकुर जी के आगे उसने इतना सिर पटका कि खून बहने लगा। वह बार-बार कहने लगी—हे ठाकुर जी, हे नारायण, तुम्हारी यही इच्छा थी? तुमको यह सब स्वीकार था? क्या मेरे हृदय-देवता फिर लौटेंगे? क्या मैं उनके दर्शन फिर पाऊँगी।

उधर दो सिपाही भी घोड़े दौड़ाते हुए गोलागाँव की ओर तेजी साथ चल दिये। खिड़की से उनको जाते देखकर शान्ती को कुछ धीरज हुआ। बार-बार आँसू पोंछती हुई कहने लगी—दुर्गा माता! मैं तुम्हें दो बकरे चढ़ाऊँगी—अपनी छाती का रक्त दूँगी—जितना चाहो, हे माता दुर्गा, जितना भी चाहो—जब तक तुम्हारी तृप्ति न हो, प्यास न मिटे, तब तक—उतना ही—हृदय का खून तुम्हें अर्पित करूँगी—मेरी मनोकामना पूरी करना।

गोलागाँव अभी दो कोस और दूर था। घोड़े के खुरों तक मुँह का फेन बह-बहकर पहुँच चुका था। घोड़ा धूल उड़ाता, नाले-नालियाँ डाँकता, गढ़े नाँघता तेज चाल से चला जा रहा था। उसने जल्दी पहुँचने की कोशिश में जान लड़ा दी थी। सिर के ऊपर गरमी के विकराल सूर्य प्रचण्ड रूप रखकर जल रहे थे।

घोड़े पर बैठे ही बैठे सुरेन्द्र का जी मचलने लगा। जान पड़ने लगा, जैसे पेट के भीतर की हर एक नाड़ी बाहर ही निकल पड़ेगी। दम भर के बाद दो-तीन बार थोड़ा-थोड़ा खून चौहों के रास्ते से बह-बहकर बाहर धुले हुए, पर धूलिभूसरित हो चले कुर्ते के ऊपर गिर गया। सुरेन्द्र ने हथेली से मुँह से आया खून पोछ डाला। एक बजे के पूर्व ही सुरेन्द्र का घोड़ा गोलागाँव में पहुँच गया। सड़क के किनारे, दूकान पर बैठे हुए, दूकानदार से उसने पूछा—"यही गोलागाँव है न?" "जी हाँ, यही है।" "रामतनु सान्याल का घर किधर होगा?" "उधर, उस ओर जाइए—"

उँगली उठाकर उस आदमी ने जिधर बताया उधर सुरेन्द्र ने घोड़े को दौड़ाता। कुछ मिनटों में ही घोड़ा सान्याल बाबू के घर पर, बाहरी बैठक के सामने, आ खड़ा हुआ।

द्वार पर एक सिपाही बैठा था। मालिक को अचानक ऐसे समय देख उसने उठकर प्रार्थना की।

"घर के भीतर कौन है?" "जी कोई भी नहीं है।" जो मुसम्मात रहती थीं, सो कहाँ चली गईं?" "वे तो सबेरे ही किराये की ही नाव पर बैठकर जाने कहाँ चली गईं।" "कहाँ किधर? किस रास्ते से?" "इधर दक्षिण की ओर नाव गई है उनकी सरकार।" "नदी के किनारे-किनारे राह है? घोड़ा दौड़ने भर की जगह होगी?"

"ठीक से मालूम नहीं शायद।"

उसने फिर घोड़ा दौड़ा दिया। दो कोस के करीब जाने पर आगे राह नहीं दिखाई पड़ी। घोड़े का चलना मुशकिल हो गया। तब घोड़े

को वहीं छोड़कर सुरेन्द्र पैदल ही आगे चला। एक बार उसने देखा, कुर्ते पर कई एक खून के कतरे जम-से गये हैं, और होठों से उस समय भी रक्त बहा जा रहा है। नदी के किनारे पहुँच कर उसने अजंलि भर-भर कर कई बार पानी पिया, मुँह धोया। इसके बाद फिर पूरी शक्ति से दौड़ लगाकर आगे बढ़ा। इस समय उसके पैरों में जूते भी न थे। सारे शरीर में कीचड़ और उसमें भी जगह-जगह खून के दाग दिखाई दे रहे थे। सीने के ऊपर तो जैसे किसी ने खून की पिचकारी ही मारी थी।

दिन डूब चला। पैर अब नहीं उठते थे। जैसे उसने अब की बार हमेशा के लिए सो जाने का विचार कर लिया है, और इसी में अंतिम शय्या पर जीवन के चिरविश्राम की आशा से उन्मत्त की भाँति अविराम गति से दौड़ा चला जा रहा है। इस शरीर में जितनी ताकत है, वह सब बिना किसी भय के खर्च करने के बाद अंतिम शय्या का आश्रय लेना है, फिर कभी नहीं उठेगा वह।

वह नदी के उस पार मोड़ के करीब—एक नाव ही तो है? लटकते हुये कलमी साग के झुरमुट को हटाती हुई आगे बढ़ने के लिए राह साफ करती चली जा रही है—वह—वह—हाँ, हाँ, नाव ही है—वही नाव है। सुरेन्द्र ने जोर से पुकारा—"बड़ी दीदी!" गला सूख रहा था; आवाज तो निकली नहीं—कई कतरे खून के निकल पड़े।

फिर जोर से पुकारा—"बड़ी दीदी!" फिर वही हाल हुआ--काफी खून निकला।

कलमी साग का झुरमुट नाव की राह बार-बार रोक रहा था, इसलिए इसी बीच में सुरेन्द्र उसके समीप पहुँच गया।

उसने फिर पुकारा—बड़ी दीदी!

दिन भर के उपवास और मानसिक दुःख क्लेश के कारण माधवी मुर्दा-सी नाव के भीतर सो रहे सन्तोषकुमार के समीप, आँखें मूँदे पड़ी

थी। एकाएक "बड़ी दीदी" की पुकार उसको सुन पड़ी। यह पुराने परिचित स्वर में उसे कौन पुकार रहा है! हाँ, वही स्वर है! माधवी उठकर बैठ गई। बाहर सिर निकालकर देखा उसने, मास्टर साहब ही तो मालूम पड़ते हैं ये। सारा शरीर धूल और कीचड़ से लथपथ हो रहा है!

माधवी ने अपनी दासी को पुकारकर कहा—ओ नयना की माँ! सुनती है, मल्लाह से कह दे, जल्दी नाव रोक दे—यहीं पर किनारे लगा दे।

उस समय सुरेन्द्र में तनिक भी शक्ति नहीं थी। वह वहीं किनारे पर धीरे से हाथ-पैर फैलाकर लेट गया। सब मिलकर सुरेन्द्र को नाव पर उठाकर लाये। मुँह और आँखों में पानी के छींटे मार-मार कर होश में लाने की कोशिश की जाने लगी। एक मल्लाह सुरेन्द्र को पहचानता था। उसने कहा—"यह तो लालतागाँव के जमींदार हैं!" माधवी ने इष्टकवच-सहित अपने गले का सोने का हार निकाल कर मल्लाह के हाथ में दिया, और कहा—क्या इसी रात को लालतागाँव पहुँचा सकते हो? मैं सबको ऐसा ही एक-एक हार इनाम में दूँगी।

सोने का हार देखकर तीन ताकतवर जवान मल्लाह उसी समय रस्सी लेकर पानी में उतर पड़े। उन्होंने कहा—माताजी, रात चाँदनी है। इसलिए हम सबेरा होते-होते अवश्य पहुँचा देंगे।

शाम हो जाने के बाद सुरेन्द्र को होश हुआ। आँखें खोलकर वह माधवी के मुँह की ओर ताकने लगा। इस समय माधवी के चेहरे पर पर्दा न था। केवल मस्तक का कुछ भाग आँचल से ढका हुआ था। वह गोद में सुरेन्द्र का सिर रक्खे बैठी थी।

कुछ देर देखते रहने के बाद सुरेन्द्र ने कहा—तुम मेरी बड़ी दीदी हो न?

माधवी ने आँचल से सुरेन्द्र के होंठ में लगे खून को अच्छी तरह पोंछकर अपनी आँखें पोंछी।

"तुम मेरी बड़ी दीदी हो?"

"मैं माधवी हूँ माधवी!"

सुरेन्द्र ने आँखें मूँदकर धीरे-धीरे कहा—आह ! वही तो ।

दुनिया भर की शान्ति और आनन्द जैसे उसी गोद में छिपा हुआ था । इतने दिनों बाद सुरेन्द्र ने उस शान्ति और सुख को आज ढूँढ़ पाया है । इसी से निकलते खून से भरे होठों के कोने में हँसी की रेखा भी फूट निकली है । सुरेन्द्र ने कहा—बड़ी दीदी, मुझे बड़ा कष्ट है !

नाव तेजी के साथ चली जा रही है । भीतर सुरेन्द्र के चेहरे पर चन्द्रमा की किरणें आकर पड़ रही हैं । दासी एक टूटा पंखा लेकर धीरे-धीरे हवा झल रही है । सुरेन्द्रनाथ ने धीरे से पूछा—कहाँ जा रही थीं ?

माधवी ने भर्राई हुई आवाज से कहा—प्रमीला की ससुराल ।

सुरेन्द्र ने कहा—छिः ! इस तरह कहीं कोई रिश्तेदार के घर जाता है दीदी ?

दसवाँ परिच्छेद

अपने घर में, अपने स्वयं सोने के कमरे में, बड़ी दीदी की गोद में अपना सिर रक्खे सुरेन्द्रनाथ इस समय मृत्यु-शय्या पर पड़ा है। दोनों पैरों को अपने गोद में रक्खे शान्ति अपने आँसुओं से उन्हे धो रही है। पबने में जितने डाक्टर और वैद्यराज थे, सब मिलकर बहुत कोशिश और मेहनत करके भी खून नहीं बन्द कर पा रहे हैं। पाँच वर्ष पहले का वही पुराना घाव आज बराबर खून फेंक रहा है।

हम माधवी की बात खोल कर कह नहीं सकते। हम स्वयं भ‌ी अच्छी तरह उसे नहीं जानते। इस समय उसे पाँच वर्ष पहले की बात याद आ रही है उसने सुरेन्द्र को अपने घर से बाहर निकाल दिया था। फिर उसे लौटा नहीं सका। लेकिन पाँच वर्ष के बाद सुरेन्द्रनाथ उसको लौटाने आया है।

शाम के पश्चात् उज्जल दीपक के प्रकाश में सुरेन्द्रनाथ ने माधवी के मुँह की ओर ध्यान से देखा। पैरों के पास शान्ति भी बैठी है। कहीं वह सुन न ले, इसी आशय से माधवी के मुँह को अपने मुँह के समीप लाकर सुरेन्द्रनाथ ने कहा—बड़ी दीदी, क्या तुम्हें उस दिन की बात याद आती है, जिस दिन तुमने मुझे निकाल दिया था? मैंने उसी का बदला ले लिया—तुमको भी निकाल दिया। क्यों, बदला पूरा-पूरा लिया है न?

माधवी मूर्छित सी हो गई। उसका सिर झुककर सुरेन्द्र के कन्धे के पास आ गया। जिस समय उसे होश आया उस समय घर में रोने धोने का भयानक कोहराम मचा हुआ था।

समाप्त